जीवन ही है प्रभु
(Full title is-जीवन ही है प्रभु और न खोजना कहीं)
(ओशो द्वारा दिए गए सात अमृत प्रवचनों का संकलन)

प्रवचन-क्रम

1. प्रभु की खोज..2
2. बहने दो जीवन को..18
3. प्रभु की पुकार...28
4. जिंदगी बहाव है- विराट से विराटतरकी तरफ.......................................44
5. प्रभु का द्वार...52
6. ध्यान अविरोध है...67
7. जीवन ही है प्रभु..77

जीवन ही है प्रभु
पहला प्रवचन

प्रभु की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीवन के गणित के बहुत अदभुत सूत्र हैं। पहली अत्यंत रहस्य की बात तो
यह है कि जो निकट है वह दिखाई नहीं पड़ता, जो और भी निकट है, उसका पता भी नहीं चलता। और मैं जो स्वयं हूं उसका तो स्मरण भी नहीं आता। जो दूर है वह दिखाई पड़ता है। जो और दूर है और साफ दिखाई पड़ता है। जो बहुत दूर है वह निमंत्रण भी देता है, बुलाता भी है, पुकारता भी है।
चांद बुला रहा है आदमी को, तारे बुला रहे हैं। जगत की सीमाएं बुला रही हैं, एवरेस्ट की चोटियां बुलाती हैं, प्रशांत महासागर की गहराइयां बुलाती हैं। लेकिन आदमी के भीतर जो है वहां की कोई पुकार सुनाई नहीं पड़ती।
मैंने सुना है, सागर की मछलियां एक-दूसरे से पूछती हैं, सागर कहां है? सागर में ही वे पैदा होती हैं, सागर में ही जीती हैं और सागर में ही मिट जाती हैं। लेकिन वे मछलियां पूछती हैं कि सागर कहां है? वे आपस में विवाद भी करती हैं कि सागर कहां है? मछलियों में ऐसी कथाएं भी हैं कि उनके किन्हीं पुरखों ने कभी सागर को देखा था। मछलियों में ऐसे महात्मा हो चुके हैं जिनकी स्मृतियां रह गई हैं, जिन्होंने सागर का अनुभव किया था। और बाकी मछलियां सागर में ही जीती हैं, सागर में ही रहती हैं, सागर में ही मरती हैं। और उन पुरखों की याद करती हैं जिन्होंने सागर का दर्शन किया था। मैंने सुना है, सूरज की किरणें आपस में पूछती हैं दूसरी किरणों से--सच में प्रकाश को देखा है? सुनते हैं कहीं प्रकाश है और सुनते हैं कहीं सूरज है! लेकिन कहां है? कुछ पता नहीं। और किरणों में भी कथाएं हैं उनके पुरखों की, जिन्होंने सूरज को देखा था, और प्रकाश को अनुभव किया था। धन्य थे वे लोग, धन्य थीं वे किरणें, जिन्होंने प्रकाश को अनुभव किया और अभागी हैं वे किरणें जो विचार कर रही हैं, और दुखी हैं, और पीड़ित हैं, और परेशान हैं। मछलियों की बात समझ में आ जाती है कि बड़ी पागल हैं। और किरणों की बात
भी समझ में आ जाती है कि बड़ी पागल हैं, लेकिन आदमी की बात आदमी को समझ में नहीं आती कि हम भी बड़े पागल हैं। ईश्वर में ही जीते हैं, ईश्वर में ही जन्म लेते हैं, ईश्वर में ही श्वास-श्वास है, ईश्वर में ही मृत्यु है, ईश्वर में ही उठना है, उसमें ही विलीन हो जाना है। और हम खोजते हैं और पूछते हैं ईश्वर कहां है? और हम उन पुरखों को याद करते हैं जिन्होंने ईश्वर का दर्शन किया। और हम उन लोगों की मूर्तियां बना कर मंदिरों में स्थापित किए हैं जिन्होंने ईश्वर को जाना। फिर मछलियों पर हंसना ठीक नहीं है। फिर मछलियों पर व्यंग्य करना ठीक नहीं है। फिर मछलियां भी ठीक ही पूछती हैं कि सागर कहां है?
स्वाभाविक ही है, मछलियों को सागर का पता न चलता हो। क्योंकि जिससे हम कभी बिछुड़ते ही नहीं उसका पता ही नहीं चलता। अगर कोई आदमी जन्म से ही स्वस्थ हो मरने तक तो उसे स्वास्थ्य का कभी भी पता नहीं चलेगा। स्वास्थ्य का पता चलने के लिए बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि बीमार होना जरूरी है। स्वास्थ्य से टूटें, अलग हो जाएं, तो ही स्वास्थ्य का पता चलता है।
और मैंने तो सुना है, और भगवान न करे कि वह बात आपके संबंध में भी सच
हो। मैंने सुना है कि बहुत से लोग जब मरते हैं तभी उनको पता चलता है कि वे जीते थे। क्योंकि जब तक मरें नहीं तब तक जीवन का कैसे पता चल सकता है। जीवन के गणित का पहला रहस्यपूर्ण सूत्र यह है कि यहां जो सबसे ज्यादा निकट है वह दिखाई नहीं पड़ता। यहां जो उपलब्ध ही है उसका पता ही नहीं चलता। जो दूर है उसकी खोज चलती है। जो नहीं मिला है उसके लिए हम तड़फते हैं और भागते हैं, दौड़ते हैं। और जो मिला ही हुआ है उसे भूल जाते हैं क्योंकि उसे याद करने का मौका ही नहीं आता है।
परमात्मा का अर्थ, प्रभु का अर्थ--प्रभु का अर्थ है वह जिससे हम आते हैं और जिसमें हम चले जाते हैं। कोई नास्तिक भी ऐसे प्रभु को इनकार नहीं कर सकता, क्योंकि निश्चित ही हम कहीं से आते हैं और कहीं चले जाते हैं।

सागर पर लहर उठती है, और फिर वापस सागर में खो जाती है। तो लहर जहां से आती है और जहां खो जाती है वह भी तो होगा ही; और जब लहर नहीं थी तब भी था और जब लहर थी तब भी था और जब लहर नहीं रह जाएगी तब भी होगा। तभी तो लहर उससे उठ सकती है और उसी में खो सकती है। नास्तिक भी यही कह सकता कि हम कहीं से आते हैं और फिर कहीं खो जाते हैं। और भी एक बात ध्यान रख लेने की है कि जहां से हम आते हैं वहीं हम खो जाते हैं। और कहीं खोएंगे भी कैसे। लहर सागर से उठेगी तो सागर में ही तो विलीन होगी। और तूफान और आंधियां हवाओं में उठेंगी तो हवाओं में ही तो बिखर जाएंगी। और वृक्ष मिट्टी से पैदा होंगे, फूल खिलेंगे तो फिर बिखरेंगे कहां? खोएंगे कहां? वापस मिट्टी में गिरेंगे और सो जाएंगे।
जीवन का दूसरा सूत्र आपको कहना चाहता हूं--जीवन के गणित का--वह यह है
कि जहां से हम आते हैं, वहीं हम वापस लौट जाते हैं। उसको क्या नाम दें, जहां से हम आते हैं और जहां हम वापस लौटे जाते हैं? कोई नाम काम चलाने के लिए दे देना जरूरी है। उसी को प्रभु कहूंगा, जहां से हम आते हैं और जहां हम लौट जाते हैं। इसलिए मेरे प्रभु से किसी का भी झगड़ा नहीं हो सकता इस जमीन पर। न कभी हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि प्रभु से मैं इतना ही मतलब ले रहा हूं--द ओरिजिनल सोर्स, वह जो मूल आधार है। कहीं से तो हम आते ही होंगे। यह सवाल नहीं है कि कहां से? कहीं से हम आते ही होंगे और कहीं हम खो जाते होंगे। और जहां से आना होता है, वहीं खोना होता है। क्योंकि जिससे हम उठते हैं, उसी में बिखर सकते हैं। हम और कहीं बिखर नहीं सकते। असल में जीवन जिससे हमने पाया है उसी को लौटा देना पड़ता है।
प्रभु मैं उसको कहूंगा, इन आने वाले दिनों में उसकी व्याख्या कर लेनी ठीक है, अन्यथा पता नहीं आप प्रभु से क्या सोचें। उसकी व्याख्या कर लेनी ठीक है। प्रभु मैं उसको कहूंगा, वह जो मूल आधार है, मूल-स्रोत है। जहां से सब निकलता है और जहां सब खो जाता है। ऐसा प्रभु कहीं आकाश में बैठा हुआ नहीं हो सकता। ऐसे प्रभु की कोई सीमा नहीं हो सकती। ऐसे प्रभु का कोई व्यक्तित्व नहीं हो सकता, कोई आकृति, कोई रूप, कोई आकार नहीं हो सकता। क्योंकि जिससे सब आकार निकलते हों उसका खुद का आकार नहीं हो सकता है। अगर उसका भी अपना आकार हो तो उससे फिर दूसरे आकार न निकल सकेंगे।
आदमी से आदमी पैदा होता है, क्योंकि आदमी का एक आकार है। और आम के बीज
से आम का पौधा पैदा होता है क्योंकि आम का बीज एक आकार है। पक्षियों से पक्षी पैदा होते हैं। सब चीजें अपने आकार से पैदा होती हैं। लेकिन ईश्वर से सब पैदा होता है इसलिए ईश्वर का कोई आकार नहीं हो सकता। वह आदमी के आकार का नहीं हो सकता है।
यह आदमी की ज्यादती है, अन्याय है कि अपने आकार में उसने भगवान की मूर्तियां बना रखी हैं। यह आदमी का अहंकार है कि उसने भगवान को भी अपनी शक्ल में बनाकर रख दिया है। यह आदमी का दंभ है कि वह सोचता है भगवान भी होगा तो उसे आदमी जैसा ही होना चाहिए। फिर आदमी भी बहुत तरह के हैं, इसलिए बहुत तरह के भगवान हैं। चीनियों के भगवान के गाल की हड्डी निकली हुई होगी, नाक चपटी होगी। चीनी सोच ही नहीं सकते, भगवान की नाक और चपटी न हो। और नीग्रो के भगवान के ओंठ बड़े चा.ैडे होंगे और बाल घुंघराले होंगे और शक्ल काली होगी। नीग्रो सोच ही नहीं सकता कि गोरा भी भगवान हो सकता है। गोरा और भगवान? गोरा शैतान हो सकता है। गोरा भगवान कैसे हो सकता है?
बहुत तरह के लोग हैं इसलिए बहुत तरह की शक्लों में भगवान का निर्माण
कर लिया है।
आदमियों के बनाए गए इस भगवान के संबंध में मैं कुछ भी नहीं कहूंगा। मैं तो उस भगवान के संबंध में कहूंगा जो किसी का बनाया हुआ नहीं है, अनक्रिएटेड है--जिससे सब बनते हैं और जिसमें सब बिगड़ जाते हैं, लेकिन जो न कभी बनता है और न कभी मिटता है। आदमी अपनी शक्ल में भगवान को बना लेता है। अगर वृक्ष भगवान के संबंध में सोचते होंगे तो भूल कर आदमी की शक्ल में न सोचते होंगे। आदमी तो उनको शैतान मालूम पड़ता होगा। न मालूम कब आकर दरख्तों की शाखाएं काट लेता है और न मालूम कब फल पकने भी नहीं पाते और तोड़ लेता है। वृक्ष अगर सोचते होंगे तो आदमी की शक्ल में शैतान को सोचते

होंगे। सारी जमीन से वृक्षों को काट डाला आदमी ने। वृक्ष कभी भी आदमी की शक्ल में भगवान को नहीं सोच सकते। और अगर वृक्षों के नीचे आदमी ने अपनी शकल के भगवान बिठा दिए होंगे तो वृक्ष बड़े नाराज होते होंगे कि शैतानों ने अपनी शक्ल भी यहां लगा रखी है। नहीं, वृक्ष के लिए संभव नहीं है कि वह आदमी की शक्ल में भगवान का विचार कर सकें।
सारी दुनिया में भगवान के लिए झगड़ा इसलिए है कि हमने अपनी-अपनी शक्लों में उसे ढाल लिया है। इसलिए आदमी की शक्ल बदलती जाती है तो भगवान की शक्ल भी हमें बदलनी पड़ती है। रोज-रोज उसमें बदलाहट करनी पड़ती है। अगर पांच हजार साल पहले के भगवान को देखें तो उसकी शक्ल और है, उसके ढंग, रीति- रिवाज और हैं। वह पांच हजार साल पहले के आदमी की शक्ल में बनाया गया है। वह पांच हजार साल पहले का भगवान यह कहता है कि अगर कोई एक आंख फोड़ेगा किसी की तो हम उसकी दो आंख फोड़ देंगे। वह पांच हजार साल पहले का भगवान यह कहता है कि अगर किसी ने जरा सी गलती की तो हम नरक की अग्नि में सड़ाएंगे उसको, जलाएंगे उसको। उस दिन किसी ने शक भी नहीं किया कि ऐसा कैसा भगवान है जो इस तरह की बेहूदी बातें बोलता है। असल में आदमी खुद ऐसी बातें उस समय बोल रहा था इसलिए उस पर शक नहीं हुआ। उसे उसने अपनी शक्ल में भगवान को बना लिया। फिर आदमी की समझ बढ़ी, और ऐसे आदमी हुए जिन्होंने कहा, जीसस ने जैसे कहा--अगर कोई तुम्हारे गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना। जब अच्छे आदमी का यह सबूत बना, अच्छे आदमी के लिए यह प्रमाण और आदर्श बना कि कोई तुम्हारे गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना, तो भगवान को बदलना पड़ेगा अब। क्योंकि अच्छा आदमी जब इतना अच्छा आदमी है कि एक चांटा मारे जाने पर दूसरा गाल कर देता है तो उस भगवान के संबंध में हम क्या सोचें, जो कहता है कि अगर एक आंख किसी ने किसी की फोड़ी तो उसकी दो आंख फोड़ दी जाएंगी। और ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाएगा। और नरक की अग्नि में सड़ाया जाएगा। यह भगवान फिर बहुत कठोर मालूम पड़ेगा। यह तो आदमी से भी गया बीता मालूम पड़ेगा। इसमें क्षमा तो मालूम ही नहीं पड़ती है। यह भगवान, जिसने नरक को ईजाद किया है, इस आदमी में क्षमा तो मालूम ही नहीं पड़ती है।
फिर हमें भगवान की शक्ल बदलनी पड़ती है। इसलिए हर युग भगवान की शक्ल बदलता है। पुरानी शक्लें आउट ऑफ डेट हो जाती हैं, पुरानी पड़ जाती हैं। इसलिए नई शक्ल बनानी पड़ती है।
भगवानों के भी बहुत फैशन रहे हैं दुनिया में। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं
कि वे हमेशा पुराने फैशनों से जकड़े रहते हैं। इसलिए दुनिया में इतने धर्म हो गए हैं। वे अलग-अलग युग के फैशन हैं। वे अभी-अभी तक पकड़े रहे हैं, लोगों को पक.ड़े हुए हैं! इसलिए इतने धर्म हो गए हैं।

लेकिन मैं इन भगवानों की बात नहीं करूंगा, क्योंकि ये कोई भगवान ही नहीं हैं। मैं तो उस प्रभु की बात करूंगा जो जीवन का मूल-स्रोत है। मैं तो उस प्रभु की बात करूंगा जो जीवन ही है। और जीवन से अलग करके सोचना परमात्मा को बड़ी भूल है।
असल में हम प्रतीकों में सोचते हैं और प्रतीकों के कारण भूल हो जाती है। पुरानी से पुरानी किताबें यह कहती हैं कि जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है ऐसे ही भगवान जगत को बनाता है। असल में जब यह बात कही गई होगी तब कुम्हार सबसे बड़ा कारीगर रहा होगा। उससे बड़ा कोई कारीगर न रहा होगा। नहीं तो भगवान से कुम्हार की अगर कोई तुलना करता तो झगड़ा-झंझट हो सकता था। जिस समय की यह बात है, कम से कम दस हजार साल पुरानी बात होगी, उस समय कुम्हार सबसे बड़ा वैज्ञानिक, सबसे बड़ा कारीगर--जिसने मिट्टी का घड़ा बना दिया--रहा होगा। हमने भगवान का कुम्हार से तालमेल बिठा लिया। हमने कहा, भगवान कुम्हार जैसा होना चाहिए जो सारी दुनिया को बनाता है, चाक पर चढ़ाता है और दुनिया को रचता है।
असल में संसार शब्द का मतलब भी चाक ही होता है, दि व्हील। संसार का मतलब होता हैः कुम्हार का चाक। जिस पर भगवान घड़े मिट्टी से गढ़ते रहता है। फिर घड़े मिटते जाते हैं, मिट्टी में चले जाते हैं। वह दूसरे घड़े बनाता रहता है। लेकिन इस प्रतीक ने बड़ा नुकसान पहुंचाया। और मनुष्य-जाति को कुछ

बुनियादी भूलों में से एक भूल यह पकड़ गई, इस प्रतीक की। इससे एक खतरा हो गया--कुम्हार अलग है और घड़ा अलग है। इससे ऐसा लगा कि संसार अलग है और परमात्मा अलग है। यह प्रतीक खतरनाक सिद्ध हुआ।
नहीं, मैं किसी दूसरे प्रतीक की बात करूं। क्योंकि मुझे यह प्रतीक उचित नहीं मालूम पड़ता। एक आदमी चित्र बनाता है। तो जब चित्रकार चित्र बनाता है तो चित्रकार अलग होता है, चित्र अलग होता है। चित्र बनता जाता है। और चित्रकार अलग होता जाता है। जब चित्र पूरा बन जाता है तो चित्रकार बिल्कुल अलग हो जाता है और चित्र की अपनी जिंदगी शुरू हो जाती है। फिर चित्रकार मर जाए तो चित्र नहीं मरेगा और चित्रकार बीमार पड़ जाए तो चित्र बीमार नहीं पड़ेगा। और चित्रकार पागल हो जाए तो चित्र पर कोई असर नहीं पड़ेगा। चित्र का अपना अस्तित्व अलग हो गया। पुराने लोगों ने अब तक परमात्मा और संसार के बीच ऐसा ही संबंध सोचा था कि उसने संसार को बनाया और अलग हो गया। संसार का अपना अस्तित्व है, और वह अलग बैठ गया है। उसे हमें खोजना पड़ेगा कि वह कहां बैठ गया है।
नहीं, मैं कोई दूसरा प्रतीक लेना चाहता हूं, ताकि मेरी बात ख्याल में
आ सके। एक नृत्यकार, चित्रकार नहीं, एक नाचने वाला, एक नर्तक है और नृत्यकार नाच रहा है। जब नृत्यकार नाचता है तो नृत्य और नृत्यकार अलग-अलग नहीं होते। और नृत्यकार अगर रुक जाएगा तो नाच भी रुक जाएगा। नृत्यकार मर जाएगा तो नाच भी मर जाएगा। और ऐसा नहीं है कि नर्तक को घर के बाहर छोड़ आओ और उसके नाच को घर ले आओ। नर्तक और नृत्य एक हैं। चित्रकार और चित्र एक नहीं हैं, कुम्हार और घड़ा एक नहीं हैं। नर्तक और नृत्य एक हैं। इसे थोड़ा समझ लेना कि नर्तक जब नाच रहा है तब नृत्य है, जब नहीं नाच रहा है तो नृत्य नहीं है। नृत्य को अलग नहीं किया जा सकता।
मेरे लिए प्रभु, मेरे लिए परमात्मा एक नर्तक है, चित्रकार नहीं है, एक कुम्हार नहीं है। सारा जीवन उसका नृत्य है। वह इससे अलग नहीं है। एक क्षण को भी अलग हो नहीं सकता है। हो जाए तो यह नृत्य बंद हो जाएगा।
इसलिए जब हमने पुराने प्रतीक के आधार पर परमात्मा को अलग कर लिया तो हमारी पूरी दिशा बदल गई उसकी खोज की। और उस खोज के बड़े घातक परिणाम हुए। क्योंकि एक तो वह अलग था नहीं और हमने उसे अलग मान कर अलग खोजना शुरू कर दिया इसलिए उसका मिलना मुश्किल हो गया। वह कभी नहीं मिलेगा। अगर कोई नाचते हुए नृत्यकार को देखकर यह सोचे कि यह तो रहा नृत्य, अब नृत्यकार कहां है? तो मैं नृत्यकार को खोजने जाता हूं। तो वह कभी भी नृत्यकार को नहीं खोज पाएगा, क्योंकि वह नृत्य में ही मौजूद है। वह नृत्य की जो लयबद्धता है, वह उसमें ही मौजूद है। वह जो नृत्य की गति है, वह उसी में मौजूद है। हो सकता है, हमें घुंघरू की आवाज सुनाई पड़ती है और हाथ-पैरों की गति दिखाई पड़ती है और नृत्यकार दिखाई भी नहीं पड़ता क्योंकि नृत्य बहुत तेज है। लेकिन हम कहते हैं कि यह तो नृत्य रहा, नृत्यकार कहां है? तो हम नृत्यकार खोजने निकल जाएं, फिर हम कभी नृत्यकार को न खोज पाएंगे। क्योंकि वह वहीं था, नृत्य में, नाच में।
आदमी ने जो प्रतीक चुन लिया एक बार कि परमात्मा अलग और संसार अलग, उससे सब गड़बड़ हो गई। जो खोजने गए वे खोज न पाए क्योंकि वे खोजते कैसे। जो उसे खोजने गए उन्होंने संसार की तरफ पीठ कर ली फिर खोजने गए क्योंकि उन्होंने कहा संसार तो अलग है भगवान से, हम तो भगवान को खोजना चाहते हैं। तो उन्होंने फूलों पर आंख बंद कर ली; उन्होंने तितलियों पर आंख बंद कर ली; उन्होंने पक्षियों के गीतों पर कान बंद कर लिए; उन्होंने वृक्षों को देखना बंद कर लिया; उन्होंने हवाओं से दोस्ती छोड़ दी; उन्होंने पृथ्वी से संबंध तोड़ लिया; उन्होंने मनुष्यों की तरफ पीठ फेर ली--उन्होंने सब तरफ से अपने को बंद कर लिया। उन्होंने कहा--यह तो संसार है, हम तो भगवान को खोजने जाते हैं। बस वे कहीं खोजने नहीं गए, वे सिर्फ आंख बंद करके मरने लगे। वे आंख बंद करके अपने भीतर खत्म होने लगे और सड़ने लगे। वह था यहीं, सबमें मौजूद था। लेकिन हमने जो सोचा, उसमें भूल हो गई।
तो एक तो भूल यह हुई कि जो उसे खोजने गए वे उसे खोज न पाए। फिर दूसरी भूल यह हुई कि जब कोई खोजने चला जाए तो मनुष्य का मन अगर खोज ही न पाए, खोज

ही न पाए, तो आखिर मनुष्य के मन के पास एक उपाय है कि जब वह बिल्कुल हार जाए; न खोज पाए, न खोज पाए तो वह कल्पना कर ले और पा ले। अगर आप दिन भर भूखे रहे हैं और भोजन नहीं खोज पाए हैं तो रात सपने में भोजन कर लेंगे। एक आदमी किसी को प्रेम करता है और उसे न उपलब्ध कर पाए तो पागल हो जाएगा। और फिर उपलब्ध कर लेगा पागल होकर। फिर वह उसी से बातें करने लगेगा, उसी के साथ जीने लगेगा। फिर सारी दुनिया से उसे मतलब न रहा। उसे अपनी प्रेयसी मिल गई, अपना प्रेमी मिल गया। उसने अब कल्पना कर ली। मनुष्य के मन--मन ने एक सुविधा जुटाई है आदमी को, कि जिसे हम न खोज पाएं, उसे भी सपने में जीआ जा सकता है। जो लोग ईश्वर को इस भांति खोजने गए और नहीं खोज पाए, नहीं खोज पाए, फिर उन्होंने अपना कल्पित ईश्वर खड़ा कर लिया। फिर वे उससे बातें करने लगे, उसके साथ खेलने लगे, नाचने लगे, कुछ करने लगे। वे सारी की सारी बातें एकदम विक्षिप्तता की बातें हैं, मन की रुग्णता की बातें हैं, मन के सपनों की बातें हैं। उनसे परमात्मा का कोई संबंध नहीं है।
दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि जिन लोगों ने खोज-बीन की और नहीं पाया, उन्होंने कहा कि ईश्वर है ही नहीं। हम खोज पर ही गलत चले गए। हम फिजूल मेहनत में पड़ गए। ईश्वर कहीं है ही नहीं, सब खोज लिया। योग देखा, प्रार्थना देखी, ध्यान देखा, साधना की, तप किया, उपवास किया, कहीं भी नहीं है। उन लोगों ने कहना शुरू किया, ईश्वर है ही नहीं।
इस जगत में दो तरह के धार्मिक लोग हुएः एक जिन्होंने कल्पना कर ली ईश्वर की और एक जिन्होंने इनकार ही कर दिया। ये दोनों बातें महंगी और खतरनाक हो गई हैं। जब कि ईश्वर यहां मौजूद था, सदा से मौजूद है। नृत्य में नृत्यकार मौजूद है, उसे नृत्य में ही खोजना पड़ेगा। और नृत्य में खोजने का एक ही ढंग है कि हम नृत्य से भागें न। हम नृत्य के प्रति जागें, हम नृत्य को पहचानें। और जितना हम नृत्य को पहचानेंगे और जितना गहरा उसमें प्रवेश करेंगे उतना ही नर्तक उपलब्ध होने लगेगा। धीरे-धीरे नृत्य तो खो जाएगा, नर्तक रह जाएगा।
धीरे-धीरे हम जानेंगे कि नर्तक ही सत्य है--नृत्य तो खेल था, नृत्य तो लीला थी। लेकिन नृत्य में ही छिपा है और बड़ा विराट नृत्य है। और एक बात और ख्याल रख लें कि नृत्य कुछ ऐसा है कि हम भी उसके बाहर नहीं हैं, हम भी उस नृत्य के ही हिस्से हैं।
तो मैं दूसरी बात और कहना चाहता हूं, यह मामला कुछ ऐसा नहीं है कि नर्तक को कोई दूसरा खोजने निकला है। मामला ऐसा है कि नर्तक का हाथ ही उत्सुक हो गया है कि मैं जानूं कि नर्तक कहां है। हम भी कुछ अलग अगर नृत्य से होते तो आसानी हो जाती। हम भी नृत्य के हिस्से और भाग हैं। जैसे कि नाचने वाले का हाथ ही पूछने लगे कि नर्तक कहां है? जैसे नाचने वाले का हाथ ही खोजने लगे कि नर्तक कहां है। जैसे नाचने वाले की आंखें ही पूछने लगें कि नर्तक कहां खो गया है? नृत्य तो दिखाई पड़ रहा है, नर्तक कहां है?
हम उसके ही हाथ और उसकी ही आंखें हैं। हम कुछ चाहें तो भी उससे अलग नहीं हो सकते। असल में जिससे हम चाह कर भी अलग नहीं हो सकते वही परमात्मा है।
लोग मुझसे कहते हैंः परमात्मा को कहां खोजें? मैं उनसे कहता हूं, कि पहले मुझे यह बताओ कि तुमने उसे खोया कब और कहां? क्योंकि खोजा उसे जा सकता है जिसे खो दिया हो। परमात्मा को हम खो ही नहीं सकते। उपाय नहीं खोने का, मार्ग नहीं खोने का। हम कैसे खोएंगे उसे? ज्यादा से ज्यादा हम भूल सकते हैं, खो नहीं सकते। भूलने और खोने में बड़ा फर्क है। हम भूल सकते हैं। भूल तो हम अपने तक को सकते हैं। भूल ही गए हैं।
पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी युद्ध के मैदान पर था, चोट खा गया गोली की। बेहोश हो गया और जब होश आया तो अपने को भूल चुका था। उसे अपना नाम याद न रहा। लेकिन सैनिकों को नाम की कोई खास जरूरत भी नहीं होती, उनके नंबर से पता चल जाता है। लेकिन युद्ध में कहीं उसका नंबर भी गिर गया। जब वह लाया गया स्ट्रेचर पर तो उसका नंबर नहीं था। जब वह होश में आया, उससे पूछा, तेरा नाम क्या है? तो उसने कहाः यही मैं आपसे पूछना चाहता हूं, मेरा नाम क्या है? मैं किसका बेटा हूं, मैं किसका पति हूं, मैं किसका पिता हूं, मैं

हूं कौन? मेरा नंबर क्या है? मैं किस रेजिमेंट का हूं? पहले तो लोगों ने समझा मजाक है लेकिन वह मजाक न थी। उसके तो मस्तिष्क को चोट लग गई थी, वह भूल गया था। फिर तो बड़ी मुश्किल हुई। कोई उपाय न रहा कि कैसे पता लगे कि वह कौन है। न मालूम कितने लोग मर चुके थे। न मालूम कितने लोग युद्ध में खो चुके थे। यह आदमी कौन है, यह है कौन? इसका कैसे पता लगे? फिर किसी ने सुझाव दिया कि इसे गांव-गांव में घुमाया जाए। अपने गांव को शायद यह पहचान ले। उसे गांव-गांव में ले जाया गया। वह स्टेशन पर उतर कर खड़ा हो जाता और देखता रहता और लोगों को देखता, लेकिन उसे कुछ पहचान में न आता। फिर तो थक गए उसे घुमाने वाले। लेकिन एक नगर में, जैसे ही वह स्टेशन पर उतरा, उसने कहा, यह मेरा गांव है। वह तो भागने लगा, वह तो उनके लिए रुका भी नहीं। वह जो उसके साथ आए थे, उन्होंने कहा, रुको भी। लेकिन वह तो भागा। वह तो और सीढ़ियां पार उतर गया था वह उसके पीछे भागा। वह तो भागा जा रहा था। वह तो कहता, अरे मेरा गांव! मेरी गली, मेरा घर, मेरी मां! वह जाकर अपनी मां के पैरों पर गिर पड़ा। उसके साथी भागे हुए पीछे पहुंचे। उसके साथियों ने कहाः तुम तो बिल्कुल खो ही गए थे, तुमने कैसे खोज लिया? उसने कहाः खो नहीं गया था, खो गया होता तो फिर खोजना मुश्किल था। सिर्फ भूल गया था। उसकी याद आ गई।
परमात्मा की खोज नहीं करनी है, सिर्फ याद करनी है। लेकिन याद के नाम
से भी बड़े धोखे चल रहे हैं। उसको लोग प्रभु-स्मरण कहते हैं। कोई राम-राम-राम जप रहा है, वह कहता है--प्रभु-स्मरण कर रहे हैं। कोई कुछ और कर रहा है, कोई कुछ और कर रहा है, वह कहता है हम स्मरण कर रहे हैं। स्मरण शब्द बहुत कीमती है। ऐसे तोतों की तरह नाम जपने से कोई स्मरण नहीं होता है। स्मरण का मतलब हैः रिमेंबरिंग। स्मरण का अर्थ हैः स्मृति, उसकी याद आ जानी। लेकिन राम-राम जपने से उसकी याद कैसे आ जाएगी? और अगर आ गई है याद तो अब क्यों जपे चले जा रहे हैं?

अगर राम कहने से याद आ सकती तो एक दफा कहने से आ जाती और जब एक दफा कहने
से नहीं आई तो दूसरी दफा कहने से कैसे आ जाएगी, तीसरी दफा कहने से कैसे आ जाएगी? लेकिन लाख-लाख, दो-दो लाख, करोड़-करोड़ जप कर रहे हैं लोग, हिसाब रख रहे हैं। एक करोड़ बार चिल्ला चुके और अभी याद नहीं आ पाई। अभी वे कह रहे हैं, अगले साल फिर एक करोड़ जप करेंगे।
मैं एक गांव में गया था, वहां एक लाइब्रेरी बनाई हुई है एक सज्जन आदमी ने--और सज्जनों की तो कमी नहीं है हमारे देश में--उनका काम ही यह है, उन्होंने जीवन अर्पित कर दिया है इसके लिए कि न मालूम कितने लोगों को लगा कर वह राम-राम लिखवाते रहते हैं। और वे किताबें भर गई हैं, बहिएं भर गई हैं; हजारों-लाखों कापियां भर गई हैं। और सारे हिंदुस्तान में उनके भक्त हैं, जो राम-राम, राम-राम लिख कर वहां भेजते रहते हैं और वहां वह लाइब्रेरी बढ़ती जाती है। वह कहते हैं, इतने अरब हो गए हैं नाम, इतने खरब हो गए हैं नाम। वह मुझे भी ले गए वहां। मैंने कहाः नाम कितने ही खरब हो गए, याद आई कि नहीं? नाम लिखने से कैसे याद आ जाएगी। सच तो यह है कि जिसकी हमें याद ही नहीं है, उसका नाम भी हमारे पास कैसे हो सकता है? नाम भी कैसे हमारे पास हो सकता है? राम को कौन कहता है कि उसका नाम है? कैसे पहचाना? कौन सा प्रमाण-पत्र है? कौन कहता है कि अल्लाह उसका नाम है? और कौन कहता है कि खुदा उसका नाम है? कैसे पहचान लिया है? यह नाम कैसे पहचान गए? याद आ जाए तो शायद नाम भी आ जाता, लेकिन याद तो आई नहीं और हम नाम से याद लाने की कोशिश करते हैं। नहीं, प्रभु-स्मरण का बहुत और ही मतलब है। प्रभु-स्मरण का मतलब राम की रट-रट लगानी नहीं है। नाम की रटंत नहीं है। प्रभु-स्मरण का अर्थ है--कि यह जो नृत्य चल रहा है, यह जो जीवन की विराट लीला चल रही है; इसके प्रति हम बोधपूर्ण हो जाएं। यह हमें दिखाई पड़ने लगे, यह हमें अनुभव होने लगे; इसकी हमें प्रतीति होने लगे कि यह हो रहा है। जब फूल खिले तो ऐसे ही न खिल जाए, हमें फूल खिलता हुआ मालूम पड़े। जब आकाश में बादल चलें तो ऐसे ही न गुजर जाएं बिना पहचाने, हम उन्हें देख पाएं और पहचान पाएं। हमारे पास से जब कोई गुजरे तो ऐसे ही न गुजर जाए, उसके भीतर जो है उसका थोड़ा-सा स्पर्श हमें हो सके। और जिंदगी में चारों तरफ "वह" मौजूद है। उसके स्मरण का मतलब बहुत

दूसरा है। उसके स्मरण का मतलब इस बात का बोध है कि हम जिससे आए हैं वह चारों तरफ मौजूद है।
और अगर इसे हम समझ पाएं तो इस बोध में कोई कठिनाई नहीं है। हमने उसे खो नहीं दिया है। हम उसे कितना ही खो दें, वह तो हमें खोता ही नहीं है। असल में जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है परमात्मा ने हमें स्वयं उसे याद रखने की जरूरत नहीं समझी, श्वास चलती रहती है, आपको याद रहे न रहे, अगर आपके याद रखने के साथ चलती हो तो जिंदगी में कई दफे आदमी मर जाए। आपको याद रखने की जरूरत नहीं, श्वास चलती रहती है, चलती रहती है, चलती रहती है। आप भूल जाते हैं तो भी चलती रहती है। बल्कि सच तो यह है कि आपकी स्मृति और आपकी श्वास का कोई संबंध ही नहीं है। आप खाना खा लेते हैं और पचा लेते हैं और पचाने का आपको कभी पता नहीं चलता है और बड़ा काम पेट में चलता रहता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि इतनी बड़ी फैक्ट्री एक आदमी के पेट में लगी है कि अगर हम इतना इंतजाम--रोटी से खून बनाने का इंतजाम--अगर बाहर करें तो कई मील के घेरे में हमें इंतजाम करना पड़े फैक्ट्री का, और इतना शोरगुल मचे जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन हमारे भीतर वह चुपचाप काम चल रहा है।
इतना अदभुत है जगत कि इसमें चुपचाप बड़े से बड़े तारे पैदा हो जाते हैं
और विलीन हो जाते हैं। उनका शोरगुल भी नहीं होता, उनका कोई पता भी नहीं चलता। जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है, वह आपके बिना जाने चुपचाप चल रहा है। लेकिन अगर हमें उसका स्मरण आ जाए जो जिंदगी में चारों तरफ चुपचाप चल रहा है; अगर उसकी पगध्वनि हमें सुनाई पड़ने लगे जो हमारे पास से गुजर रहा है, तो प्रभु का स्मरण, तो प्रभु का स्मरण होगा। और तब बैठ कर हम कोई नाम न जपने लगेंगे और बैठ कर हम कोई माला न फेरने लगेंगे, क्योंकि यह सब बातें बहुत स्टुपिड हैं, बहुत ही बुद्धिहीनता की हैं। और इनको करने से कोई और बुद्धिहीन; ज्यादा से ज्यादा बुद्धिहीन हो सकता है। और कुछ भी नहीं हो सकता है।
इसलिए जो कौम इस तरह के काम पकड़ लेती है उसकी बुद्धि और प्रतिभा धीरे- धीरे खो जाती है और जंग खा जाती है। प्रभु का स्मरण तो चौंका देगा, जगा देगा। ज्यादा जीवंत हो जाएंगे आप। सब चीजों में रंग-रस बदल जाएगा। सब कुछ और हो जाएगा। सब कुछ और हो जाएगा, जिंदगी बहुत रसपूर्ण, अर्थपूर्ण नृत्य से भर जाएगी; एक संगीत का अर्थ आ जाएगा। जिंदगी आपको पहली दफे ऐसी लगेगी जैसे फूट पड़ी भीतर से, जैसे कोई बीज फूटता है और अंकुर बन जाता है; और कोई कली टूटती है और फूल बन जाती है; और कोई वीणा के तारों को छेड़ देता है और सन्नाटा बंद हो जाता है। और चारों तरफ वीणा के स्वर गूंज जाते हैं। ठीक जब प्रभु का स्मरण आएगा तो आपकी वीणा के तार गूंज उठेंगे, आपकी कली टूट कर फूल बन जाएगी, आपका बुझा दीया अचानक लपट लेकर जल उठेगा। आप पाएंगे, आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो गए हैं। तब बैठ कर राम-राम नहीं जपते रहेंगे, तब आप पाएंगे कि जपें किसको? वही मौजूद है। पुकारें किसको? वही मौजूद है। कौन किसको पुकारे? क्योंकि मैं भी वही हूं।
और तब जिंदगी एक नया अर्थ लेकर, एक नई गति लेकर चलना शुरू हो जाएगी। वह जिंदगी एक धार्मिक आदमी की जिंदगी है--आनंद से भरी, अमृत से भरी, शांति से भरी, प्रेम से भरी। उसका कण-कण फिर आनंद है। फिर दुख नहीं है। क्योंकि फिर दुख भी आनंद है। फिर कांटे नहीं हैं, क्योंकि फिर कांटे ही फूल हैं। फिर मृत्यु नहीं है, क्योंकि फिर मृत्यु भी और बड़े जीवन में प्रवेश है।
इस प्रभु की बात करना चाहूंगा, इन चार दिनों में। और बात ही क्यों? क्योंकि अकेली बात से क्या होगा? बातें तो हम बहुत कर चुके, बहुत सुन चुके और कई बार तो ऐसा हो जाता है कि बातें सुनना भी एक रोग हो जाता है, हम सुनते चले जाते हैं, सुनते चले जाते हैं। फिर सुनना भी एक रस हो जाता है। लेकिन सुनने से वीणा कैसे निकलेगी। आप खाने के संबंध में बातें नहीं सुनते हैं, खाना खाते हैं। और परमात्मा के संबंध में सिर्फ बातें सुनते हैं। आप सोने के लिए बिस्तर पर जाते हैं, सोने के संबंध में किताब नहीं पढ़ते। हां, कुछ लोग पढ़ते हैं, जिनको नींद नहीं आती; अनिद्रा। कुछ लोग हैं, कुछ अभागे लोग हैं, जिनको नींद जैसी सरल चीज भी असंभव हो गई है। वे जरूर किताबें पढ़ते हैं। वे किताबों में पढ़ कर खोजते हैं कि कैसे सो जाएं। हमें हंसी आती है

क्योंकि हम ऐसे ही सो जाते हैं। हम बिस्तर पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं, हमें कुछ और नहीं करना पड़ता। लेकिन जो नहीं सो पाता है, उससे पूछिए। क्या नींद इतनी आसान है? बल्कि उसे हैरानी होती है कि लोग कहीं धोखा तो नहीं दे रहे हैं कि कहते हैं कि बिस्तर पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। मैंने तो बहुत दफा सिर रखा है बिस्तर पर। नींद का तो कोई पता नहीं चलता है। हजारों उपाय करो, नींद नहीं आती है। करवटें बदलो, भगवान को स्मरण करो, मालाएं फेरो, हाथ-पैर धोओ, यह करो, वह करो, गर्म दूध पीयो, गरम पानी से स्नान करो-- कुछ नहीं होता, नींद नहीं आती। सब उपाय करता हूं, नींद नहीं आती। और लोग कहते हैं कि हम बस तकिए पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। पता नहीं, सारी दुनिया धोखा तो नहीं दे रही है कि आंख बंद करके लोग पड़े हैं? जिसको नींद नहीं आती, उसे शक आता है। लेकिन उस बेचारे को पता नहीं। उसे यह पता ही नहीं है कि नींद न तो किताबें पढ़ कर लाई जा सकती है क्योंकि किताबें पढ़ने से नींद में सिर्फ बाधा पड़ सकती है।
और न नींद हमारे किसी उपाय से लाई जा सकती, क्योंकि कोई भी उपाय श्रम है, और श्रम नींद में बाधा है। न माला फेरने से नींद लाई जा सकती, क्योंकि माला फेरना भी जागने का काम है। और जो भी जागने का काम है उससे नींद में बाधा पड़ेगी। राम-राम जपने से भी नींद नहीं आ सकती, क्योंकि जपने से और नींद टूट सकती है। नींद आएगी कैसे। कोई उपाय नींद नहीं ला सकता। लेकिन वह आदमी कहेगा, फिर भी मैं सोना चाहता हूं।
लेकिन हम परमात्मा के संबंध में किताबें पढ़ते हैं, उपाय करते हैं। लेकिन परमात्मा में जीना चाहते हैं, तब फिर कुछ और भी करना पड़ेगा। अकेली बात काफी नहीं है। बात कुछ खबर ला सकती है, बात कुछ प्यास जगा सकती है; बात कहीं आप झपकी ले रहे हों तो चौंका सकती है। लेकिन चलना पड़ेगा। यात्रा करनी पड़ेगी, कुछ करना पड़ेगा। और कितना आश्चर्यजनक है--उसे पाने के लिए कुछ करना पड़ेगा, जिसे हमने कभी खोया ही नहीं।
लेकिन मैंने कहा कि जीवन के गणित का यह सूत्र है कि जो निकट है वह भूल जाता है और परमात्मा हमारे निकटतम है, इसलिए बिल्कुल भूल गया है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है, यह तर्कयुक्त है। अगर मैं आपसे कहूं कि जरा आंख बंद करके अपनी मां की तस्वीर याद करिए तो आप सदा सोचते रहे होंगे कि मां की तस्वीर मुझे भलीभांति याद है। लेकिन आंख बंद करके जब मां की तस्वीर को ख्याल करने बैठेंगे, तो रेखाएं बिखर जाएंगी, चेहरा बनाना मुश्किल हो जाएगा। मां को, जिसको पहले दिन से देखा, जिसकी तस्वीर सबसे ज्यादा निकट थी; वह भी बिखर जाएगी और खो जाएगी। कोई अभिनेत्री की तस्वीर याद भी आ सकती है, साफ-साफ दिखाई पड़ती है, लेकिन मां की तस्वीर बिखर जाएगी। असल में हम इतने निकट रहे हैं कि फिर हमने मां को देखने की जरूरत भी नहीं समझी। हम उसके इतने हिस्से थे कि हमने कभी उसे गौर से देखा भी नहीं। कभी आपने अपनी मां को गौर से देखा है? नहीं, हम जो निकट है, उसे गौर से देखते ही नहीं। और परमात्मा तो हमारे निकटतम है। निकटतम भी शब्द ठीक नहीं है। हम वही हैं। उसके साथ एक ही हैं, इसलिए निकटतम कहना भी ठीक नहीं है। वही हम हैं तो उसे तो हम बिल्कुल ही भूले हुए हैं। उसका तो हमें कुछ पता ही नहीं है।
इसका पता लगाने हम कहां जाएं, हिमालय पर? काशी, मक्का, मदीना--कहां जाएं? और अगर परमात्मा यहां नहीं मिलता जूनागढ़ में, तो हिमालय पर कैसे मिल जाएगा? मैं ही खोजने वाला, जूनागढ़ से हिमालय चला जाऊंगा--मैं ही--जो यहां हूं वहां होऊंगा। जगह बदल जाएगी, झाड़ बदल जाएंगे, हवाएं बदल जाएंगी, सूरज की रोशनी कम-ज्यादा होगी, ठंडक होगी, गर्मी होगी, कुछ फर्क होंगे, झरने होंगे--लेकिन मैं तो वही होऊंगा जो यहां हूं। और वह मुझे यहां नहीं खोज में आता तो वहां कैसे आ जाएगा? अगर मुझे उसका स्मरण यहां नहीं आता तो वहां कैसे आ जाएगा?
रवींद्रनाथ ने एक बहुत अदभुत गीत लिखा है और गीत में वहां व्यंग्य करवाया है बुद्ध की पत्नी यशोधरा से। बुद्ध लौट आए हैं वापस, बारह वर्षों की खोज करने के बाद। घर आए हैं। तो रवींद्रनाथ ने अपने गीत में बुद्ध की पत्नी से कहलवाया है कि मुझे और कुछ भी नहीं पूछना है, मुझे सिर्फ एक ही बात पूछनी है कि जो तुम्हें वहां जंगल में जाकर मिला, वह क्या यहां मौजूद

नहीं था? इतना ही मुझे बता दो, बाकी मुझे कुछ भी नहीं पूछना है। वह जो तुम्हें बारह वर्ष जंगलों में खोज कर मिला, वह इस घर में क्या मौजूद नहीं था? और बुद्ध चुप रह गए। जवाब देना मुश्किल है। बुद्ध को भी जवाब देना मुश्किल है क्योंकि बात तो यही सच है कि जिसे वे खोज कर आए हैं वह यहां भी था। और जिस खोजने के ढंग से उन्होंने वहां खोजा है उसी खोजने के ढंग से वह यहां भी खोजा जा सकता था। इसलिए सवाल खोजने वाले ढंग और खोजने वाले आदमी का है, खोजने वाली जगह का नहीं।
लेकिन हजारों साल से हम ऐसा सोच रहे हैं कि वह कहीं और जाकर खोजना पड़ेगा। और यह क्यों सोच रहे हैं? यह हम इसलिए सोच रहे हैं कि हम सदा से ऐसा मानकर बैठे हैं कि जिंदगी से कहीं दूर है, जीवन से कहीं और है, जीवन से भिन्न। न केवल इतना ही, बल्कि कुछ नासमझों ने तो हमें यह भी सिखा दिया है कि जीवन की बिल्कुल शत्रुता में वह मिलेगा। जब तक हम जीवन के पक्के दुश्मन न हो जाएं, यानी दुश्मनी इस तरह की न कर लें कि लोग अगर पैर के बल चलते हैं तो हम सिर के बल, शीर्षासन न लगाएं तब तक वह नहीं मिलेगा। दुश्मनी पक्की करनी है और लोगों से बिल्कुल उलटे हो जाना है। लोग जो करते हैं, वह जिंदगी का जो रास्ता है उससे उलटे चले जाना है, तब वह मिलेगा।
बड़ी हैरानी की बात है, जिंदगी से अगर इतनी दुश्मनी है उसकी तो जिंदगी
के होने का मतलब क्या है फिर? अगर जिंदगी से वह इतना नाराज है, तो फिर जिंदगी है क्यों? और अगर जिंदगी इतनी बुरी है तो वह क्यों इसे बढ़ाए चला जाता है? क्यों इसे जिंदगी दिए चला जाता है? क्यों ये श्वासें आती हैं और जाती हैं? और क्यों ये जन्म हैं? और क्यों ये फूल खिलते हैं? और क्यों ये बीज बन जाते हैं?
अगर जिंदगी इतनी बुरी है, जैसे महात्मा कहते हैं, तो परमात्मा बड़ा नासमझ है। या तो महात्मा ठीक है या परमात्मा ठीक है। दोनों में से चुनाव करने का वक्त आ गया है। अगर महात्मा ठीक है तो परमात्मा बिल्कुल गलत है क्योंकि वह जिंदगी को रोज जन्म दिए जा रहा है। वह काम रोकता ही नहीं। वह कभी का काम रोक सकता था। वह कभी का लॉक आउट कर देता। ताला लगा देता, तालाबंदी कर देता, हड़ताल कर देता, कुछ भी तो कर सकता था। वह कभी का बंद कर देता कि जिंदगी अब बस बहुत हो गई, जिंदगी बंद कर देते हैं।
वह है कि नाचे चला जाता है। वह है कि उसकी अतृप्ति का अंत ही नहीं है।
वह तृप्त ही नहीं होता। वह कहता है, बुद्ध भी बना लिए, ठीक है, लेकिन और बेहतर आदमी बनाना है। राम बना लिया, ठीक है, लेकिन अभी और बेहतर आदमी बनाना है। कृष्ण आ गए बहुत ठीक है, लेकिन और बढ़िया बांसुरी बजाने वाला पैदा करेंगे। वह तृप्त ही नहीं होता। वह कहता, हम रोज नया माडल... वह आदमी को रोज नया बनाए चला जाता है। उसकी अतृप्ति का कोई अंत नहीं है। इसलिए पुराना दुबारा नहीं बनाता। इसलिए राम को फिर से नहीं बनाता, ऐसी भूल नहीं करता वह। इसलिए कृष्ण को दुबारा नहीं बनाता।
क्योंकि दुबारा सिर्फ वे ही बनाते हैं जिनमें मौलिकता की कमी है। जो ओरिजनल नहीं है। जो मौलिक नहीं है। फिर वही एक आदमी एक गीत लिख लेता है, फिर उसी गीत को लौट-लौट कर दोहराए चला जाता है, फिर नई-नई कड़ियों में उसी को बांधता रहता है। एक आदमी एक चित्र बना लेता है, फिर घूम-फिर कर वही चित्र बनाए चला जाता है। फिर जिंदगी भर वह वही करता रहता है, वही चित्र दोहर-दोहर कर आता रहता है। एक आदमी एक कहानी लिख लेता है, फिर बस वही कहानी, वही प्लाट, वह फिर बार-बार लिखे चला जाता है--नाम बदल देता है, थोड़ी घटना बदल देता है, लेकिन वही।
लेकिन ईश्वर बहुत अदभुत है। कितने अरब-अरब, खरब-खरब लोग जमीन पर पैदा होते हैं, लेकिन एक-एक आदमी अनूठा और अलग और अद्वितीय है, यूनीक है। दुबारा दोहरता नहीं है एक ही आदमी। रिपीटिशन है ही नहीं वहां। अभी भी तीन-साढ़े तीन अरब आदमी जमीन पर हैं, अगर खोजने जाएं तो एक जैसे दो आदमी नहीं मिलेंगे। आदमी तो बहुत दूर की बात है, दो एक जैसे पत्ते भी न मिलेंगे खोजने से। एक आम का पत्ता तोड़ लें, और खोजने चले जाएं। तो दूसरा पत्ता न मिलेगा ठीक वैसा।

उसकी सृजनात्मकता बड़ी मौलिक है, वह रोज नये को पैदा किए चला जाता है। लेकिन आदमी? आदमी कहता है--राम जैसे बन जाओ; बुद्ध जैसे बन जाओ; महावीर जैसे बन जाओ। आदमी बड़ा अमौलिक है। आदमी बड़ा रूढ़िग्रस्त है। वह कहता है ठीक है, चलो, राम हो गए तो अब राम जैसे ही बन जाओ। अब नये की क्या जरूरत है? लेकिन परमात्मा नये की खोज में निरंतर लगा है और महात्मा सदा पुराने
की खोज में लगे हुए हैं। वे कहते हैं, हमारी किताब जितनी ज्यादा पुरानी उतनी अच्छी और परमात्मा रोज नये को पैदा करता है। वह बूढ़े को विदा कर देता है और बच्चे को खड़ा कर देता है। वह कहता है, अब आप हट आइए, अब आप काफी पुराने हो गए। अब आप जरा मंच के पीछे आ जाइए। बड़ा नासमझ है! एक अर्थ में नासमझ है। नासमझ इन अर्थों में कि बूढ़ा तो इतना अनुभवी था कि उसको हटा कर गैर-अनुभवी जरा से बच्चे को उसकी जगह दे रहे हो। बूढ़े ने तो जिंदगी भर इतना अनुभव से, ज्ञान से सीखा था, इकट्ठा किया था; इतना समझ पाया था--उसको विदा कर रहे हो। और एक बिल्कुल अनजान, अपरिचित बच्चे को ला रहे हो जिसका कुछ भरोसा नहीं कि अच्छा होगा कि बुरा होगा, कि क्या करेगा क्या नहीं करेगा, चोर होगा, बेईमान होगा, साधु होगा, असाधु होगा, कुछ पता नहीं। एक अबोध बच्चे को रख रहे हो उसकी जगह हटा कर।
लेकिन परमात्मा नये को प्रेम किए चला जाता है। वह कहता है, जो भी पुराना हो जाता है वह वापस हट आए। नये में जीवन है, पुराने में मृत्यु है। जो पुराना है अर्थात जो मर गया है, मर रहा है, मरने के करीब पहुंच गया है। नया अर्थात जो अभी जीएगा, जन्मेगा, बढ़ेगा, फैलेगा, फलेगा, फूलेगा... आगे और आगे, और आगे।
महात्मा कहते हैं कि जीवन के विरोध में है धर्म। वे कहते हैं जीवन को छोड़ दो तो ही धार्मिक हो सकते हो। और मेरा मानना है कि इसी शिक्षा के कारण पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाई क्योंकि जीवन को छोड़ना असंभव है। जो भाग जाते हैं छोड़ कर वे भी छोड़ते नहीं। सिर्फ नई शक्लों में, नये दरवाजों से जीवन में वापस लौट आते हैं। घर छोड़ कर भागते हैं, फौरन एक आश्रम बनाते हैं। अब आश्रम में और घर में सिवाय बोर्ड के और कोई फर्क नहीं है। इधर बेटे- बेटियां, पति-पत्नी इनको छोड़ कर भागते हैं वहां चेला और चेलियां, शिष्य और शिष्याएं इकट्ठा कर लेते हैं।
ये सब नामों के रूपांतरण हैं। इसमें कोई भी फर्क नहीं है। बाप अपने बेटों के लिए जितना चिंतित होता है गुरु अपने शिष्यों के लिए उससे ज्यादा चिंतित रहता है। बाप को अपने बेटों के बिगड़ जाने का जितना भय सताता है, गुरुओं को अपने शिष्यों के बिगड़ जाने का उससे भी ज्यादा भय सताता है। एक तरफ से दरवाजा जीवन का बंद करते हैं, जीवन का झरना दूसरी तरफ से टूट कर बहना शुरू हो जाता है। वह नई-नई शक्लों में खोज लेता है। लेकिन जिंदगी से कोई भाग नहीं सकता। क्योंकि जिंदगी से भागना असंभव है। हम जहां भी जाएंगे, जिंदगी वहां है। हम सिर्फ जिंदगी की शक्लें बदल सकते हैं, रूप बदल सकते हैं, द्वार बदल सकते हैं, लेकिन जिंदगी से भाग नहीं सकते। हम यह कर सकते हैं कि हम यह कपड़े न पहनें, इनको हम गेरुवे रंग से रंग लें। लेकिन वह गेरुवा रंग उतना ही जिंदगी का हिस्सा है जितना कोई और रंग। और गेरुवे वस्त्र जिंदगी के लिए उतने ही आनंदपूर्ण हो सकते हैं जितने कोई और रंग। इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसने कौन से वस्त्र पहन रखे हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है कि कौन किस मकान में ठहर गया है। इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे सिर्फ एक ही फर्क पड़ता है कि एक पाखंड, हिपोक्रेसी पैदा होती है,
और कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए अगर हम जिंदगी को सीधे-सीधे स्वीकार कर लें तो हमें पाखंड और बेइमानियां न खोजनी पड़ें।
अभी एक संन्यासी मेरे पास मिलने आए। साथ में एक आदमी को लाए थे। मैंने उनसे कहा कि कल सुबह आप आ जाएं, अभी तो मुझे वक्त नहीं है, कुछ और लोगों को समय दिया है। आप कल सुबह आ जाएं। उन्होंने कहाः बड़ा मुश्किल होगा। क्योंकि मैं पैसे पास में नहीं रखता। तो यह भाई पैसा रखते हैं, वह साथ चलते हैं। वह भाई पैसा रखते हैं और इनकी सुविधा से मुझे आना-जाना पड़ता है, क्योंकि टैक्सी का पैसा भी चुकाना पड़ता है और पैसा मैं रखता नहीं। तो अगर इनको सुबह समय हो तो फिर मैं आ सकता हूं। तो मैंने उनसे कहाः पैसे का एक

बंधन था वह समझ में आता था, अब यह एक और डबल बंधन है। यह आदमी और एक उपद्रव है! इसको अगर समय नहीं है तो आप नहीं आ सकते? क्योंकि यह पैसा रखता है, यह पैसा देगा-लेगा।
अब यह सब पाखंड है। अगर टैक्सी में बैठना है तो पैसे देने हैं। तो अपने खीसे में रखें कि दूसरे के खीसे में रखें, इससे क्या फर्क पड़ता है। हां, एक फर्क पड़ता है क्योंकि वह रखने वाला यही सोच रहा है कि जो खीसे में रखा है वह नरक जाएगा, हम स्वर्ग जाएंगे। अब बड़ा मजा है। पैसे तुम्हारे, खीसे में रखे हुए है वह और नरक जाएगा? और आप धार्मिक संन्यासी हैं और आप उसको नरक भिजवा रहे हैं और वह बेचारा आपकी सेवा कर रहा है, आपकी टैक्सी के पैसे चुका रहा है।
जिंदगी से भागने का परिणाम हुआ है पाखंड। सीधा नंगा पाखंड खड़ा हो गया
है सब तरफ। क्योंकि हम जिंदगी से भागेंगे कैसे? जिंदगी चारों तरफ है, जहां भी हम जाएंगे वहीं है। जिंदगी को जीना पड़ेगा। तो अगर कमाएंगे नहीं तो भीख मांगनी पड़ेगी। भीख मांगने का मतलब हमारे लिए कोई और कमाएगा। और क्या मतलब होता है भीख मांगने का? लेकिन मजा यह है कि हम कमाने को पाप समझते हैं और कोई दूसरा कमाता है, उससे लेने को पाप नहीं समझते। तो यह तो सिर्फ लीगल, कानूनी तरकीब हुई। इससे कुछ हल होना वाला है। यह सिर्फ कानूनी तरकीबें हुईं।
गांधी जी पढ़ने लंदन गए, तो उनके समाज के लोगों ने कहा कि उनको हम जाने
न देंगे, क्योंकि वह जाति के बाहर कर दिए जाएंगे। और उनके समाज के लोगों ने फैसला किया कि जो उनकी सहायता करेगा, पैसे देगा, उसको भी हम जाति के बाहर कर देंगे। उनके चचेरे भाई सब पैसा लेकर बंबई गांधी को पहुंचाने गए। उनके चचेरे भाई ने कहाः अगर मैं तुमको पैसा दूंगा तो मैं तो जाति के बाहर हो जाऊंगा, तो मैं तो पैसा नहीं दे सकता। अब बड़ी मुश्किल हो गई। वक्त आ गया जाने का, समय आ गया और वह भाई ही पैसा देने से इनकार करता है। वह कहता है, मैं पैसा दूंगा तो मैं भी जाति से बंद हो जाऊंगा। तब एक कानूनी तरकीब, लीगल तरकीब निकाली गई। गांधी जी ने किसी और आदमी से जो जाति के बाहर है, उनकी जाति का नहीं, उससे रुपये ले लिए। उनके भाई ने उसको रुपये चुका दिए। उनके भाई ने गांधी जी को पैसे नहीं दिए, इसलिए समाज उन पर मुकदमा नहीं चला सकती, और उनकी समाज के किसी आदमी ने गांधी जी की सहायता नहीं की। वह किसी बाहर के आदमी ने सहायता की, उसका आप कुछ बिगाड़ ही नहीं सकते, क्योंकि वह समाज के बाहर ही है।
इसको मैं कहता हूं कानूनी तरकीबें। जो आदमी जिंदगी से भागेंगे वे इस तरह की कानूनी तरकीबें खोज लेंगे। सभी संन्यासी कानूनी तरकीबों से जी रहे हैं। सारा संन्यास कानूनी तरकीब से जी रहा है। क्योंकि जिंदगी छोड़ कर जीना ही असंभव है। तो फिर तरकीबें निकालनी पड़ेंगी कि हम कैसे जीएं, उसका ढंग खोजना पड़ेगा।
जिंदगी से कोई भाग नहीं सकता। और जिंदगी से भागना उचित भी नहीं है, क्योंकि भाग कर जाइएगा कहां? आप भी तो जिंदगी हैं। मैं भी तो जिंदगी हूं। सबसे भाग जाऊंगा अपने से कहां भागूंगा।
मैंने सुना है, एक फकीर के पास कुछ युवक साधना के लिए आए थे कि हमें परमात्मा को खोजना है। तो उस फकीर ने कहाः तुम एक छोटा सा काम कर लाओ। उसने उन चारों युवकों को एक-एक कबूतर दे दिया और कहा कि कहीं अंधेरे में मार लाओ जहां कोई देखता न हो। एक गया बाहर, उसने देखा चारों तरफ, सड़क पर कोई नहीं था, दोपहरी थी, दोपहर था, लोग घरों में सोए थे, तो उसने जल्दी से गर्दन मरोड़ी। भीतर आकर उसने कहा कि यह रहा, सड़क पर कोई भी नहीं था। दूसरा युवक बड़ा परेशान हुआ, दिन था, दोपहरी थी। उसने कहा--मैं मारूं, तब तक कोई आ जाए, कोई खिड़की खोल कर झांक ले; कोई दरवाजा खोल दे, कोई सड़क पर निकल आए, तो गलती हो जाएगी। उसने कहा, रात तक रुक जाना जरूरी है। रात जब अंधेरा उतर आया तब वह गया और उसने गर्दन मरोड़ी और वापस लाकर सांझ को गुरु को दे दिया और कहा, यह रहा--कोई भी नहीं था, अंधेरा पूरा था। अगर होता भी तो भी दिखाई नहीं पड़ सकता था। तीसरे युवक ने सोचा कि रात तो है, अंधेरी है, सब ठीक है, लेकिन आकाश में तारों का प्रकाश है, और कोई निकल आए, कोई दरवाजे से झांक ले, किसी

को थोड़ा भी दिखाई पड़ जाए तो खतरा है। तो वह एक तलघरे में गया, द्वार बंद कर लिया, ताला लगा लिया, गर्दन मरोड़ी, लाकर गुरु को दे दिया। उसने कहा कि तलघरे में मारा, ताला बंद था, भीतर आने का उपाय न था, नजर की तो बात ही नहीं आनी थी।
चौथा युवक बहुत परेशान हुआ। पंद्रह दिन बीत गए, और महीना बीतने लगा। गुरु ने कहा, वह चौथा कहां है? क्या अभी तक जगह नहीं खोज पाया? आदमी खोजने भेजे। वह लड़का करीब-करीब पागल हो गया था। कबूतर को लिए गांव-गांव फिर रहा था, बिल्कुल पागल हो गया था। लोगों से पूछता था ऐसी कोई जगह बता दो जहां कोई न हो। लोगों ने उसे पकड़ा, उसे गुरु के पास लाए और कहा कि पागल हो गए हो। तुम्हारे तीन साथी तो उसी दिन मार कर आ गए; रात होते-होते सब वापस लौट आए। तुम क्या कर रहे हो? उसने कहाः मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं भी अंधेरे तलघरे में गया, लेकिन जब मैं कबूतर की गर्दन मरोड़ने लगा तो मैंने देखा, कबूतर मुझे देख रहा है। तो मैंने कबूतर की आंखों पर पट्टी बांध दी और मैं तब एक और अंधेरी गुफा में गया कि पट्टी में से ही किसी तरह दिखाई न पड़ जाए। लेकिन जब मैं गर्दन मरोड़ने को था तो मैंने देखा कि मैं तो देख ही रहा हूं। तब मैंने अपनी आंखों पर भी पट्टी बांध ली और पट्टियों पर पट्टी बांध ली, ताकि आंख कहीं से झांक कर देख न ले। क्योंकि आदमी की आंख का कोई भरोसा नहीं। कितनी पट्टियां बंधी हों, थोड़ी तो झांक कर देख ही सकती हैं। और जहां मना ही हो वहां तो झांक कर देख ही सकती हैं। उसने कहा, मैंने काफी पट्टियां बांध लीं, सब तरफ से पट्टियां बांध लीं, कबूतर की आंखों पर पट्टियां बांध लीं। बस गर्दन दबाने को था कि मुझे यह ख्याल आया, अगर परमात्मा कहीं है तो उसे दिखाई तो पड़ ही रहा होगा। और उसी की खोज में मैं निकला हूं। तबसे मैं पागल हुआ जा रहा हूं, और मुझे वह जगह ही नहीं मिल रही है जहां परमात्मा न हो। यह कबूतर सम्हालिए आप। यह काम नहीं होने का। उसके गुरु ने कहा कि बाकी तीन फौरन विदा हो जाओ, तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं है। इस चौथे आदमी की यात्रा हो सकती है। इसे जीवन के चारों तरफ छिपे हुए का थोड़ा सा बोध हुआ। इसने गहरे से गहरे खोज करने की कोशिश की। इसे कुछ बोध हुआ है कि कोई मौजूद है चारों तरफ।
यह चारों तरफ जो मौजूदगी है, जो प्रेजेंस है उसका अनुभव, स्मरण--इसका स्मरण कैसे जगे? जिसे हम भूल गए हैं और खोया नहीं, उसे हम फिर कैसे स्मरण करें? इन चार दिनों में आपसे मैं बात ही नहीं करना चाहता; सच तो यह है कि बात मैं सिर्फ मजबूरी में करता हूं, बात करने में मुझे बहुत रस नहीं है। बात सिर्फ इसलिए करता हूं कि कुछ और करने को भी आपको राजी कर सकूं। हो सकता है बात से आप राजी हो जाएं, कुछ और किया जा सके, जिसका बात से कोई संबंध नहीं है। तो सांझ बात करूंगा और जिनको लगे कि हां, कहीं और यात्रा करनी है उनके लिए सुबह, बात नहीं, सुबह ध्यान का प्रयोग करेंगे और उस द्वार में प्रवेश की कोशिश करेंगे जहां से उस प्रभु का पता चलता है जो कि जीवन है। उसका पता चल सकता है। कठिन नहीं, क्योंकि वह बहुत निकट है। कठिन नहीं, क्योंकि वह दूर नहीं। और कठिन नहीं, क्योंकि हमने उसे सच में खोया नहीं है। और कठिन नहीं, क्योंकि हम चाहे उसे कितना ही भूल गए हों, वह हमें किसी भी हालत में और कभी भी नहीं भूल पाता है।
बच्चे बड़े हो जाते हैं और मां को भूल जाते हैं--स्वाभाविक है भूल जाएं। जिंदगी, बच्चे मां को याद रखें या जिंदगी में निकलें, या कुछ और खोजें। बच्चे मां को भूल जाते हैं। स्वाभाविक है, क्योंकि बच्चे भागेंगे जिंदगी की तरफ, वह मां को भूल जाएंगे। लेकिन मां, बच्चे कितना ही भूल जाएं, वह नहीं भूल पाती।
मैं एक छोटे से स्टेशन पर रुका हुआ था। गाड़ी चूक गया था और एक स्टेशन पर, प्लेटफार्म पर बैठा हुआ था। पास के गांव से एक बूढ़ी औरत को कुछ लोग लाए स्ट्रेचर पर, उसके सिर में पट्टियां बंधी थीं, सिर पर किसी ने चोट की थी, संभवतः कुल्हाड़ी से सिर पर चोट की थी। कुछ औरतें रो रही थीं। अभी वह औरत जिंदा थी, कुछ उसके रिश्तेदार, साथी, वे सब थे। सब उदास थे। मैंने उनसे पूछा कि क्या हुआ? तो वह औरत जो स्ट्रेचर पर पड़ी थी, आधी बेहोश सी, कुछ कभी होश आता था, कभी बेहोश थी। उसे किसी बड़े नगर में ले जाते थे वे गाड़ी में

बिठा कर, किसी बड़े अस्पताल में। पास की दूसरी औरतों ने मुझसे कहा कि मत पूछिए, एक ही बेटा है इसका, और ऐसे बेटे तो पैदा होते से मर जाएं तो अच्छा। क्योंकि उस बेटे ने इसको यह कुल्हाड़ियां मार दी हैं। लेकिन वह औरत एकदम से चौंक गई, जैसे ही उन पास की स्त्रियों ने कहा--वह मरती हुई औरत--जो शायद जिंदा नहीं रहेगी, घड़ी दो घड़ी बाद मर जाएगी। उसका बहुत खून बह गया है और गाड़ी में देर है और पता नहीं वह बड़े अस्पताल तक पहुंचेगी कि नहीं पहुंचेगी। वह मरती हुई बूढ़ी औरत एकदम चौंक गई, उसने आंख खोली, उसने कहा कि ऐसा मत कहो। आज मेरा बेटा है, तो उसने मारा है। अगर न होता तो मारने के लिए भी तरस जाती कि कोई मारे। मेरा बेटा है तो उसने मारा। लेकिन यह मत कहो कि ऐसा बेटा पैदा होते से ही मर जाता। अगर मेरा बेटा न होता तो कोई मारे, इसके लिए भी तरस जाती। वह एक मरती हुई मां, उसके बेटे ने उसको कुल्हाड़ी मार दी है, मारने में कोई कमी नहीं छोड़ी, लेकिन वह नहीं भूल पाती, वह नहीं भूल पाती।
ईश्वर--मैं कह रहा हूं उस चेतना के सागर को--जहां से हम आते हैं और जहां
हम चले जाते हैं। जब मां नहीं भूल पाती, जिससे हमारा केवल शरीर आता है, सिर्फ शरीर आता है। ध्यान रहे, ज्यादा बहुत कुछ नहीं आता मां से। और शरीर भी बड़ी छोटी व्यवस्था में आता है। वह मां नहीं भूल पाती, क्योंकि उससे शरीर आया हमारा। लेकिन जिससे हमारा सब कुछ आया है, सारा व्यक्तित्व, उसके भूलने का सवाल नहीं है। लेकिन ध्यान रहे, इसका यह मतलब नहीं है कि वह बैठ कर आपकी याद कर रहा है। क्योंकि याद हम तभी करते हैं जब हम भूल भी जाते हैं। जिसे हम भूलते नहीं, उसकी याद का सवाल ही नहीं है। आप याद में है हीं। और जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुंचता है उस दिन हैरान हो जाता है कि कितनी उसने याद की, कितनी प्रतीक्षा की, वह तो द्वार पर ही बैठा था। कितनी बार उसने द्वार खटखटाए, कितनी बार पुकारा कि खोलो, खोलो; लेकिन हम व्यस्त थे अपने कामों में। यह भी हो सकता है कि हम पूजा में व्यस्त रहे हों, कि हम अपनी घंटी हिला रहे हों, कि अपने भगवान के सामने आरती चला रहे हों और हमने सोचा हो, यह कौन बाधा दे रहा है दरवाजे पर? हवाएं दरवाजे पर धक्का दे रही हैं और हवाएं उसके हाथ हैं और हम अपने बनाए भगवान के सामने पूजा कर रहे हैं। वह जो द्वार पर दस्तक दे रहा है जीवन की, थकता नहीं है, दिए जाता है दस्तक, उसे हम कैसे याद कर सकते हैं।
सुबह ध्यान में हम उसकी स्मृति में ही प्रवेश करने का प्रयोग करने को हैं। इसलिए सुबह जो लोग आएं, वे वे ही लोग आएं जो सुनने में नहीं, जानने में, होने में, पहुंचने में, खोजने में, कुछ करने में उत्सुक हैं। एक घंटा सुबह हम गहरे से गहरे ध्यान का प्रयोग करने को आएं। रोज सांझ उस संबंध में कुछ कहूंगा। उस कहने का केवल एक ही मतलब है कि सुबह आप आ सकें। जो भी आपके प्रश्न होंगे वे लिख कर दे देंगे, उनकी रोज सांझ की चर्चाओं में मैं बात कर लूंगा। लेकिन ध्यान रहे, जो मैं कह रहा हूं, उस संबंध में ही प्रश्न पूछेंगे तो अच्छा है। और सुबह जो लोग ध्यान करेंगे, ध्यान के संबंध में भी जो पूछना हो, वह भी लिख कर दे देंगे, उनकी भी रात हम बात कर लेंगे।
इधर मेरा इरादा बात करने का नहीं है। कभी भी नहीं था। बात सिर्फ मजबूरी है। कोई उपाय नहीं कि आपको वहां ले जाया जाए जहां बहुत फूल खिले हैं। कोई उपाय नहीं है कि आपको वहां ले जाया जाए जहां उसका मंदिर है। शायद आप सुन लें पुकार और उस तरफ चल पाएं।
तो कल सुबह साढ़े आठ बजे जो लोग उसके मंदिर में प्रवेश करना चाहते हैं,
वे सुबह आ जाएं। आने के लिए दो तीन बातें ख्याल में रखें--बिना स्नान किए कोई भी न आए, कपड़े ताजे पहन कर आएं और घर से ही चुप चलें। रास्ते पर बातचीत करते मत आएं और यहां तो आकर बिल्कुल ही चुप बैठें। यहां कोई बातचीत नहीं करेगा। जो भी आए, चुपचाप बैठता चला जाए। चुपचाप पहले से ही आंख बंद करके बैठ जाएं। कुछ भी न करें। मैं जब आऊंगा ठीक साढ़े आठ बजे, और ठीक साढ़े आठ के पहले ही आ जाएं, बाद में कोई न आए। क्योंकि जब प्रयोग शुरू हो जाएगा तो फिर आपकी समझ में आना मुश्किल हो जाएगा कि क्या हो रहा है। ठीक साढ़े आठ के पहले आ जाएं स्नान करके, और घर से चुप चलें। आंख भी नीची रखे हुए आएं। आंख से भी बहुत देखें मत चारों तरफ। आंख नीची करके आएं, बात बंद करके, चुपचाप मौन में

यहां आकर बैठ जाएं। ठीक साढ़े आठ बजे सुबह प्रयोग शुरू हो जाएगा और वह साढ़े नौ तक चलेगा।

मेरी बातों को इतने शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन ही है प्रभु
दूसरा प्रवचन

बहने दो जीवन को

मेरे प्रिय आत्मन्!
ध्यान के संबंध में थोड़ी सी बातें समझ लेनी जरूरी हैं। क्योंकि बहुत गहरे में तो समझ का ही नाम ध्यान है।
ध्यान का अर्थ हैः समर्पण। ध्यान का अर्थ हैः अपने को पूरी तरह छोड़ देना परमात्मा के हाथों में। ध्यान कोई क्रिया नहीं है, जो आपको करनी है। ध्यान का अर्थ हैः कुछ भी नहीं करना है और छोड़ देना है उसके हाथों में, जो कि सचमुच ही हमें सम्हाले हुए है।
जैसा मैंने कल रात कहा, परमात्मा का अर्थ है--मूल-स्रोत, जिससे हम आते हैं और जिसमें हम लौट जाते हैं। लेकिन न तो आना हमारे हाथ में है और न लौटना हमारे हाथ में है। हमें पता नहीं चलता, कब हम आते हैं और कब हम लौट जाते हैं। ध्यान, जानते हुए लौटने का नाम है। जब आदमी मरता है तो बिना चाहे, बिना जाने लौट जाता है। ध्यान, जानते हुए लौटने का नाम है। जानते हुए अपने को उस मूल-स्रोत में खो देना है, ताकि हम जान सकें कि वह क्या है और यह भी जान सकें कि हम क्या हैं।
तो ध्यान के लिए पहली बात तो स्मरण रखनाः समर्पण, सरेंडर, टोटल सरेंडर। पूरी तरह अपने को छोड़ देने का नाम ध्यान है। जिसने अपने को थोड़ा भी पकड़ा वह ध्यान में नहीं जा सकेगा; क्योंकि अपने को पकड़ना यानी रुक जाना अपने तक और छोड़ देना यानी पहुंच जाना उस तक, जहां छोड़ कर हम पहुंच ही जाते हैं।
इस समर्पण की बात को समझने के लिए पहले हम तीन छोटे-छोटे प्रयोग करेंगे, ताकि यह समर्पण की बात पूरी समझ में आ जाए। फिर चौथा प्रयोग हम ध्यान का करेंगे। समर्पण को भी समझने के लिए सिर्फ समझ लेना जरूरी नहीं है, करना जरूरी है, ताकि हमें ख्याल में आ सके कि क्या अर्थ हुआ समर्पण का। तो पहला प्रयोग हम करेंगे पांच मिनट तक, फिर दूसरा, फिर तीसरा, ऐसे पांच-पांच मिनट के तीन प्रयोग समर्पण की पूर्ण भावना को ख्याल में ले आने के लिए; फिर चौथा प्रयोग ध्यान का। क्योंकि इन तीन को समझ कर ही ध्यान किया जा सकता है।
एक तो थोड़े फासले पर बैठें, कोई किसी का स्पर्श न करता हो। ध्यान में कोई गिर भी सकता है। इसलिए इतनी दूरी पर बैठें कि कोई गिर जाए तो उससे कोई किसी के ऊपर न पड़ जाए। और इतनी जगह यहां है कि फैल कर बैठ जाएं, पास बैठने की कोई जरूरत नहीं है। थोड़े फासले पर ही हो जाएं, ताकि अपने को पूरी तरह छोड़ सकें; अन्यथा यही ख्याल बना रहेगा कि अपने को सम्हाले रखें। अपने को सम्हाले रखना बाधा हो जाएगी। उसमें कंजूसी न करें। इतना दूर फासला पड़ा है, सब हट जाएं। और बातचीत नहीं, आवाज नहीं, चुपचाप।
अब पहली बात, पहला प्रयोग। पहला प्रयोग हैः बहने का प्रयोग। नदी में कोई आदमी तैरता है, हममें से भी बहुत लोग तैरे होंगे; अन्यथा लोगों को तैरते देखा होगा। जब कोई तैरता है तो कुछ करता है। लेकिन तैरने से बिल्कुल उलटी दशा है बह जाना, फ्लोटिंग। एक आदमी बहता है, तैरता नहीं। अपने हाथ-पैर रोक लेता है और बहा चला जाता है। फिर नदी जहां ले जाए, वहीं चला जाता है। फिर उसकी अपनी जाने की कोई इच्छा न रही। तैरने वाले की इच्छा है। तैरने वाला कहीं पहुंचना चाहता है। तैरने वाला नदी से लड़ेगा। तैरने वाले को उस किनारे पहुंचना है, उस जगह पहुंचना है। नदी अगर बाधा देगी तो दुश्मन मालूम पड़ेगी। और नदी बाधा देगी; क्योंकि नदी अपने रास्ते भागी जा रही है। तैरने वाले का अपना रास्ता होगा तो भेद पड़ने ही वाला है। बहने के साथ नदी का कोई विरोध नहीं है। बहने का मतलब है, नदी के साथ एक हो जाना है। नदी जहां ले जाए वहीं हमारी मंजिल है। तब फिर नदी से कोई दुश्मनी नहीं रह जाती है। समर्पण का पहला अर्थ हैः इस जीवन के साथ हमारी कोई दुश्मनी न रह जाए। इस जीवन के साथ हम बह सकें, तैरें न। ध्यान की पहली सीढ़ी हैः बहने का अनुभव। वह हम

पहला अनुभव करेंगे पांच मिनट तक। जैसा मैं कहूं वैसा थोड़ा प्रयोग करें, ताकि भीतर उसका फील, उसका अनुभव हो सके।
आंखें बंद कर लें। बंद करने का मतलब भी कि आंखों को बंद हो जाने दें,
उन पर भी जोर न डालें। पलकों को ढीला छोड़ दें, ताकि आंखें बंद हो जाएं। आंख बंद कर लें--बंद हो जाने दें। पलकें ढीली छोड़ दें, ताकि आंखें बंद हो जाएं। शरीर को ढीला छोड़ दें, कोई अकड़, कोई कड़ापन शरीर में न रखें। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। क्योंकि हम कोई काम करने नहीं जा रहे हैं, हम बहने जा रहे हैं, तो हम अपने को बिल्कुल रिलैक्स और ढीला छोड़ दें। आंख बंद हो गई, शरीर ढीला छोड़ दिया।
देखिए बीच में आकर न बैठें। अब आप लोग पीछे चले जाएं। और जो भी पीछे आएं, पीछे बैठें, वहां बीच में न बैठें, पीछे... ।
आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। अब एक छोटा सा चित्र देखें, ताकि हम अनुभव कर सकें। देखें, पहाड़ों के बीच में सूरज की रोशनी में चमकते हुए पहाड़ों के बीच में एक नदी भागी चली जा रही है। सूरज की रोशनी में पहाड़ चमक रहे हैं और नदी तेज गति से भागी चली जा रही है। आंखों के पर्दे पर ठीक से देखें--नदी तेजी से भागी चली जा रही है, पहाड़ चमक रहे हैं सूरज में, नदी की लहरें चमक रही हैं, नदी तेजी से भागी चली जा रही है। नदी जोर से शोरगुल करती भागी चली जा रही है। नदी बह रही है, ऐसा अपनी आंख के पर्दे पर ठीक से देखें। नदी को बहुत ठीक से देखें, पहाड़ों के बीच भागती हुई नदी सागर की तरफ--गहरी है बहुत, नीला है रंग, तेज हैं लहरें, गति है जोर की। जब ठीक से देखेंगे तो बराबर दिखाई पड़ने लगेगा नदी भागी जा रही है। इसके भागने को भी ठीक से देख लें। इसकी गहराई को भी ठीक से समझ लें; क्योंकि थोड़ी ही देर में इसके साथ हम भी बह रहे होंगे। इसकी गहराई में हम भी उतर जाएंगे।
नदी भाग रही है, नदी तेजी से भाग रही है... उसे देखते-देखते ही मन पर हलकी शांति छा जाएगी। अब इस नदी में हमें भी उतर जाना है। उतर जाएं। मन के चित्र पर, मन की कल्पना पर देखें कि हम भी इस नदी में उतर गए--और तैरना नहीं है, बहना है--और इस नदी में बहने लगें। जैसे एक सूखा पत्ता नदी में बहने लगे। अब सूखा पत्ता तैरेगा कैसे? उसके पास हाथ-पैर ही नहीं हैं। सूखे पत्ते की भांति हो जाएं और नदी में बहना शुरू कर दें। लहरें बहाने लगेंगी, बहाने लगेंगी। सागर की तरफ नदी भागने लगेगी, आप भी उसके साथ बहने लगेंगे। नदी के साथ एक हो जाएं। अब पांच मिनट के लिए नदी के साथ बहने का अनुभव करें। सिर्फ बहने का। ध्यान रहे, तैरना नहीं है। हाथ-पैर मत चलाना, छोड़ देना अपने को। नदी डुबाए तो डूब जाना, उबारे तो उबर आना। जहां ले जाए वहां चले जाना। हमारी कोई मंजिल नहीं है, हम बहने को तैयार हैं। अब मैं पांच मिनट के लिए चुप हो जाता हूं। आप नदी में बहें। ताकि बहने का ठीक-ठीक अनुभव ख्याल में आ जाए कि बहने का अर्थ क्या है? ध्यान की यह पहली सीढ़ी बनेगी। इसे ठीक से पहचान लेना जरूरी है।
दो पहाड़ चमकते हैं सूरज की रोशनी में, नदी भागती है बीच से, उसमें हम
भी बहे चले जा रहे हैं। और बहते-बहते ही इतनी शांति मालूम होने लगेगी, इतनी ताजगी घेर लेगी, इतना आनंद भीतर प्रकट होने लगेगा; सब चिंताएं गिर जाएंगी, सब भार गिर जाएगा। क्योंकि सभी चिंताएं तैरने की चिंताएं हैं, बहने वाले को चिंता की कोई जरूरत नहीं। सब तनाव गिर जाएगा, क्योंकि सब तनाव तैरने वाले के तनाव हैं। बहने वाले को तनाव की कोई जरूरत नहीं।
अब मैं चुप होता हूं। आप पांच मिनट तक बहते रहें। और अपने को बिल्कुल ढीला छोड़ दें और बह जाएं।
छोड़ दें... बह जाएं... बिल्कुल बह जाएं... नदी में छोड़ दें और बह जाएं। नदी भागी चली जाती है और आप बहे चले जाते हैं। छोड़ दें... बह जाएं... बिल्कुल बह जाएं... छोड़ दें... नदी बहा ले जाए, नदी के साथ एक हो जाएं। नदी भागी जाती है, आप बहे चले जाते हैं। बहने का ठीक से अनुभव करें, मन एकदम शांत होने लगेगा। एकदम शीतलता और ताजगी भीतर प्रवेश कर जाएगी।
बहें... छोड़ दें... शरीर को छोड़ दें, सब छोड़ दें और बह जाएं। बिल्कुल छोड़ दें। नदी भागी चली जाती है। देखें... पहाड़ चमकते हैं धूप में, नदी भागी चली जाती है और आप भी बहे जा रहे हैं। अपने को बहता हुआ देखें। यह बहने का

अनुभव ठीक से कर लें, ध्यान की पहली सीढ़ी यही है। बह रहे हैं... बह रहे हैं... बह रहे हैं... तैर नहीं रहे हैं, कुछ कर नहीं रहे हैं, नदी बहाए लिए जा रही है, बहाए लिए जा रही है। नदी भाग रही है, आप भी बहे चले जा रहे हैं। आपको कुछ भी नहीं करना, बस बह जाना है। देखें, मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। एक ताजगी घेर लेगी। अब धीरे-धीरे नदी से बाहर निकल आएं, किनारे पर खड़े हो जाएं। नदी अब भी बही जा रही है, किनारे पर खड़े होकर दो क्षण अनुभव करें, नदी में बहने में कैसा सुख, कैसी शांति, कैसा आनंद भीतर भर दिया है! बाहर निकल आए हैं। अब धीरे-धीरे आंख खोल लें और दूसरा प्रयोग समझें। धीरे-धीरे आंख खोल लें, दूसरा प्रयोग समझें।
पहला प्रयोग हैः बहने का, फ्लोटिंग; ध्यान की पहली सीढ़ी है। दूसरा प्रयोग हैः मरने का, मृत्यु का, मिट जाने का। जैसे कोई बीज मिटता है तो फिर अंकुर हो जाता है। जैसे कोई कली मिटती है तो फिर फूल हो जाती है। जब कुछ मिटता है, तभी कुछ हो पाता है। जब हम आदमी की तरह मिटेंगे, तभी हम परमात्मा की तरह हो पाएंगे। जन्म की पहली कड़ी मृत्यु है। और जो मरना नहीं सीख पाता, मिटना नहीं सीख पाता, वह कभी भी उस विराट तक नहीं पहुंच पाता, जहां तक पहुंचने में सब कुछ छूट जाना जरूरी है। जीसस का एक वचन हैः "जो अपने को बचाएंगे, वे मिट जाएंगे और जो मिट जाते हैं, वे बचा लिए जाते हैं।"
दूसरा प्रयोग है, ध्यान की दूसरी सीढ़ीः मिट जाने का। अब हम दूसरा प्रयोग करेंगे। यह ख्याल में ले लेंगे अनुभव, ताकि फिर ध्यान में वे अनुभव हम काम में ला सकें। दूसरा प्रयोग करने के लिए बैठें। आंख बंद कर लें अर्थात आंख बंद हो जाने दें। आंख को ढीला छोड़ दें, ताकि आंख बंद हो जाए। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। शरीर ढीला छूट गया है, आंख बंद हो गई है। बिल्कुल ढीला छोड़ दें शरीर को, उसको हमें पकड़ कर नहीं रखना है, हमने छोड़ ही दिया और आंख बंद हो गई है।
अब दूसरा चित्र देखें, आंखों के सामने एक चिता जल रही है। जोर से चिता में लपटें उठ रही हैं। चिता के चारों तरफ अंधेरे में भी चेहरे पहचाने जा सकते हैं। आपके मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे हो गए हैं। चिता की लपटें बढ़ती चली जा रही हैं। ठीक से चिता को देख लें, क्योंकि इसी चिता पर थोड़ी देर में चढ़ जाना है। अभी हम नदी में बहे थे, अब आग में बह जाना है। नदी बहा सकती है, आग मिटा ही देगी। देख लें ठीक से आंखों के पर्दे पर आग जल रही है, चिता जल रही है। जोर से लपटें उठती हैं आकाश की तरफ। घेरा बांध कर मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे खड़े हैं, उनके चेहरे भी दिखाई पड़ते हैं। आग की लपटों में उनके चेहरे चमकते हैं। आग की लपटों को ठीक से देख लें। अभी इसमें हमें ही उतर जाना है। यह किसी और की चिता नहीं, हमारी ही चिता है।
देखें, चिता जल रही है और आप ही चिता पर चढ़ा दिए गए हैं। अब चिता ही नहीं जल रही, आप भी जल रहे हैं। अपने को जलता हुआ देखें, थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा, सब मिट जाएगा। न चिता रह जाएगी, न हम रह जाएंगे, थोड़ी सी राख मरघट पर पड़ी रह जाएगी। एक पांच मिनट के लिए अपने को जलता हुआ देखें। सब जल रहा है। भागने का मन होगा, भाग नहीं सकते हैं। मर ही गए हैं, भागेंगे कहां? चिता से उतर आने का मन होगा, उतर नहीं सकते हैं। उतरेगा कौन? थोड़ी देर में राख बनने लगेगी। मित्र, प्रियजन विदा हो जाएंगे। मरघट शांत, सन्नाटे में रह जाएगा। ठीक से देखें, चढ़े हैं चिता पर, जल रहे हैं। आग की लपटें उठ रही हैं, सब जला जा रहा है, हम ही जले जा रहे हैं। पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं। अपने को जलता हुआ देखें। थोड़ी देर में राख पड़ी रह जाएगी। मरघट पर सन्नाटा हो जाएगा। छोड़ दें आग में अपने को... आग जोर पकड़ती जा रही है और हम जल रहे हैं। सब जल जाएगा। सिर्फ वही बच रहेगा जो जल नहीं सकता है। जो जल सकता है, वह जल जाएगा। और उसी की तो हमें पहचान करनी है जो जल न सके। जो जलता है उसे जल जाने दें।
देखें... आग लगी है, चिता की लपटें जल रही हैं, आप भी जले जा रहे हैं, जले
जा रहे हैं, जले जा रहे हैं... लपटें बढ़ती जाती हैं, शरीर जलता जा रहा है। लपटें बढ़ती जा रही हैं, शरीर जलता जा रहा है। थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा। हम ही राख हो जाएंगे। और अपने को राख हुआ देखना बड़ा गहरा अनुभव है।

देखें... सब राख हुआ जा रहा है, सब जलता जा रहा है। मित्र, प्रियजन जाने शुरू हो गए हैं। उनकी पीठ दिखाई पड़ने लगी, मुंह अब दिखाई नहीं पड़ता। वे लौट रहे हैं। आखिर वे मरघट में कब तक खड़े रहेंगे? वे जाने लगे हैं, वे जा रहे हैं। लपटें बढ़ती जाती हैं, राख बढ़ती जाती है। इधर लपटें बढ़ती हैं, उधर राख बढ़ रही है। हम जले जा रहे हैं, जले जा रहे हैं, समाप्त हुए जा रहे हैं... बिल्कुल मिट जाना है... मिट जाएं... बिल्कुल मिट जाएं... ।
अब मरघट पर कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। लपटें भी बुझने लगीं, राख का ढेर
ही रह गया है। मरघट पर सन्नाटा छा गया है। सब मिट जाएगा। थोड़ी देर में अंगारे भी बुझ जाएंगे और राख ही पड़ी रह जाएगी। देखते रहें, अपने को मिटते देखना बहुत गहरा अनुभव है। ध्यान की दूसरी सीढ़ी वही है। मरघट पर सन्नाटा छा गया है। लपटों की आवाज भी बंद हो गई। अंगारे भी बुझने लगे हैं। राख का एक ढेर पड़ा है।
देखें, ठीक से देखें, मरघट पर अब कोई नहीं है, राख का एक ढेर पड़ा रह गया है--हमारी ही राख का ढेर! हम मिट गए हैं, राख का एक ढेर पड़ा रह गया है। और मरघट है, और सन्नाटा है। हवाएं आती हैं और राख उड़ जाती है। उस राख को सम्हालने को भी कोई न रहा। यही हैं हम! यही थे हम! राख के इस ढेर को ठीक से पहचान लें, यही है वह चेहरा जिसको बहुत बार दर्पण में देखा है। यही है वह शरीर, जिसे जीवन भर, अनेक-अनेक जीवन सम्हाला। यह राख का ढेर बहुत बड़ी सच्चाई है। इसे ठीक अनुभव कर लें। ध्यान का दूसरा चरण यही है। सब मिट गया है, सब मिट गया है, सन्नाटा है। राख का ढेर पड़ा है, उसे ठीक से देखें। देख लिया राख के ढेर को, अपने होने को, अपनी आखिरी परिणति को?
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें। फिर तीसरा प्रयोग समझें और पांच मिनट के लिए तीसरा प्रयोग करें।
पहला प्रयोग हैः बहने का अनुभव।
दूसरा प्रयोग हैः मरने का अनुभव।
और तीसरा प्रयोग हैः तथाता।
तीसरा प्रयोग सबसे गहरा प्रयोग है। उसे ठीक से समझ लेना जरूरी है।
तथाता का अर्थ हैः चीजें जैसी हैं वैसी हैं। हमें उनसे कोई विरोध नहीं।
पक्षी आवाज कर रहे हैं, कर रहे हैं। धूप गरम है, है। हवाएं चलती हैं और ठंड मालूम पड़ती है, मालूम पड़ती है। जिंदगी जैसी है वैसी हमें स्वीकार है। न हम उसमें कोई बदल करना चाहते हैं, न कोई हेर-फेर करना चाहते हैं। हमारा कोई विरोध नहीं, हमारी कोई अस्वीकृति नहीं। तथाता का अर्थ हैः थिंग्स आर सच। चीजें ऐसी हैं और हम उनके लिए राजी हैं। तथाता का अर्थ हैः परिपूर्ण राजी हो जाना, टोटल एक्सेप्टेबिलिटी।
जब हम किसी चीज के लिए पूरी तरह राजी हो जाते हैं, तो चित्त की सब शांति-अशांति सब खो जाती है। तब चित्त का सब रोग, सब बीमारी विनष्ट हो जाती है। तब चित्त का सब तनाव सब समाप्त हो जाता है। हमारे मन का तनाव और अशांति हमारे विरोध से पैदा होती है। हम चाहते हैं, चीजें ऐसी हों। अब एक कौआ आवाज करेगा, एक पक्षी चिल्लाएगा और हम चाहेंगे कि ध्यान कर रहे हैं हम, पक्षी चुप हों। लेकिन पक्षियों को आपके ध्यान से क्या प्रयोजन? हवाएं चलेंगी और हम चाहेंगे हवाएं न चलें, थोड़ी देर ठहर जाएं। रास्ते पर गाड़ियां निकलेंगी, आवाज होगी, हार्न बजेगा और हम चाहेंगे, यह सब बड़ी बाधा, बड़ा डिस्टर्बेंस। तब फिर ध्यान में आप कभी भी न जा सकेंगे।
जिंदगी आपके लिए ठहर नहीं सकती है। जिंदगी चलेगी, चलती रहेगी। फिर क्या रास्ता है? जो लोग भी ध्यान करने बैठते हैं, उनकी परेशानी यह है कि कभी कोई रास्ते पर हार्न बजा देता, कभी कोई बच्चा रोने लगता, कभी कोई कुत्ता आवाज करने लगता, कभी कोई सड़क पर झगड़ा हो जाता, उनकी मुसीबत यह है कि डिस्टर्बेंस हो जाते हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूंः अगर तथाता की बात समझी, तो इस दुनिया में डिस्टर्बेंस जैसी चीज है ही नहीं। तथाता का मतलब हैः जो हो रहा है, हमें स्वीकार है। डिस्टर्बेंस का सवाल कहां है? डिस्टर्बेंस तो तब होता है, विघ्न-बाधा तब होती है, जब हम कहते हैं, ऐसा न हो और होता है, तब परेशानी होती है।

लेकिन हम कहते हैं, जैसा हो रहा है वैसा हो रहा है, हम राजी हैं। हार्न बजता है तो हम सुनने को राजी हैं। बच्चा रोता है तो हम सुनने को राजी हैं। पक्षी चिल्लाते हैं तो हम सुनने को राजी हैं। हमारा कोई विरोध ही नहीं। हम इस जीवन में एक विरोधी की तरह खड़े नहीं होते, हम इस जीवन को एक मित्र की तरह स्वीकार कर लेते हैं। स्वीकृति का भाव ध्यान की गहरी से गहरी बात है। और जो व्यक्ति सब स्वीकार कर लेता है, वह व्यक्ति सबसे मुक्त हो जाता है। जहां तक हमारा विरोध है, वहां तक हमारा बंधन है। जहां तक हम अकड़े हैं, वहां तक हमारी मुसीबत है। जहां तक हम कह रहे हैं, ऐसा हो, ऐसा न हो, वहां तक, वहां तक परेशानी है। लेकिन जब हम कहते हैं, जैसा हो रहा है, वैसा हो रहा है, हमें स्वीकार है, हम राजी हैं, हम भी उसी के एक हिस्से हैं, तब फिर सब विरोध खो जाता है।
तो ध्यान का तीसरा पांच मिनट प्रयोग करें और फिर चौथा प्रयोग ध्यान
का होगा। इन तीनों के जोड़ से ध्यान निकलेगा। तथाता का तीसरा प्रयोग करें। आंख बंद करें, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख को बंद हो जाने दें और शरीर
को ढीला छोड़ दें। शरीर को ढीले छोड़ने होने का मतलब है, हम अपने चारों तरफ से एक हो गए, अलग न रहे। अब जो कुछ भी हो रहा है, उसे चुपचाप अनुभव करते रहें, जानते रहें। विरोध न लें। देखें, गाड़ी आवाज करती है, पक्षी गीत गाते हैं, सब स्वीकार कर लें। जो भी हो रहा है, हो रहा है, हम राजी हैं। हम राजी हैं, इसको भीतर मन में गहरे गूंज जाने दें। हम राजी हैं, हम सबसे राजी हैं। जो भी हो रहा है, जो भी हो रहा है, जो भी हो रहा है, हम राजी हैं। हमारा कोई विरोध नहीं। और बाहर ही नहीं, भीतर भी राजी हैं। अगर पैर शून्य हो गया, अगर पैर पर चींटी काटती है, हम उसके लिए भी राजी हैं। अगर भीतर कोई विचार चलता, हम उसके लिए भी राजी हैं। हमारा विरोध ही नहीं है; बाहर-भीतर सब तरफ हम राजी हैं।
एक पांच मिनट के लिए तथाता की स्थिति में अपने को छोड़ दें। धूप पड़ रही चेहरे पर, पसीना बहने लगे, हम राजी हैं। ठीक है, धूप पड़ेगी, पसीना बहेगा। और जब हम राजी होंगे, तो धूप भी बड़ी शीतल मालूम पड़ने लगेगी। देखें, सड़क की आवाज भी बहुत प्रीतिकर मालूम होगी, जब हम राजी हैं। जब हम राजी हैं, तब सारे जगत से प्रीतिकर अनुभव होने लगता है। और उसी प्रेम के द्वार से परमात्मा का आगमन होता है। जब हम राजी हैं, तब प्रेम और जब प्रेम, तब परमात्मा।
अब पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं।
आप राजी हो जाएं। सब समग्र रूप से स्वीकार कर लें और देखें फिर मन कैसा शांत हो जाता है, जैसा कभी न हुआ होगा। मन के भीतर शांति के झरने फूट पड़ते हैं, जैसे कभी न फूटे होंगे। एक भीतर प्रकाश छा जाता है। एक आलोक शीतल, एक ठंडी प्रकाश की छाया फैल जाती है। देखें, चुपचाप अनुभव करें। जो है, है और हम राजी हैं। पक्षियों आवाज करो! हवाएं बहो! सूरज तपो! हम राजी हैं... हम राजी हैं... हम राजी हैं... जो भी है उसके लिए हम राजी हैं। हमारा कोई विरोध नहीं है। हम इस बड़े जगत के एक हिस्से मात्र हैं। इन हवाओं के भी हम हिस्से हैं, इन आवाज करते पक्षियों के भी, इस तपती हुई धूप के भी, सड़क पर होते शोरगुल के भी--हम इस बड़े जगत के एक हिस्से हैं। हमारा कोई विरोध नहीं। हिस्सा विरोध कैसे कर सकता है? हम राजी हैं। हम बिल्कुल राजी हैं। छोड़ दें अपने को इस स्वीकृति में। जो भी हो रहा है, हो रहा है, हो रहा है। जो भी हो रहा है, ठीक है, शुभ है। जो भी हो रहा है, सुंदर है। जो भी हो रहा है, हो रहा है, हम राजी हैं, हमारा कोई विरोध नहीं है। और देखें, मन कैसी शांति से भरता चला जाता है। और देखें, मन कैसा मौन होता चला जाता है। और देखें, भीतर कैसा नया प्रकाश फैलने लगता है... ट्रेन की आवाज कैसी प्रीतिकर है। पक्षियों की आवाजें, हवाओं की आवाजें, वृक्षों का, पत्तों का हिलना--सब स्वीकृत है। जीवन जैसा है, स्वीकृत है।
स्वीकार... स्वीकार... समग्र स्वीकार... जो भी है, स्वीकृत है। और जैसे
ही स्वीकार होता है, हम समस्त के एक हिस्से मात्र हो जाते हैं। फिर सूरज अलग नहीं, पक्षी अलग नहीं, वृक्ष अलग नहीं, कोई अलग नहीं, पृथ्वी अलग नहीं, आकाश अलग नहीं, सब जुड़ गया, सब एक हो गया। हम सबके साथ एक हो जाते हैं।

ठीक से अनुभव कर लें तथाता को, इस स्वीकृति को, इस राजी होने को ठीक से अनुभव कर लें। यह ध्यान का तीसरा चरण है। ठीक से पहचान लें क्या अर्थ है स्वीकार का। देखें, भीतर कहीं कोई विरोध तो नहीं? देखें, भीतर कहीं किसी चीज को इनकार करने का भाव तो नहीं? देखें, कहीं किसी चीज के कारण भीतर विघ्न और बाधा तो नहीं बनती है? अनुभव कर लें, सब स्वीकृत है, सब स्वीकृत है, जो हो रहा है, स्वीकृत है। अस्वीकार है ही नहीं।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें। फिर ध्यान का प्रयोग समझें और हम ध्यान का प्रयोग करेंगे।
ये तीन प्रयोग समझने के लिए किए। ये तीन चरण हैं ध्यान के। पहला प्रयोग हैः बह जाने का। प्रयोग हमने इसलिए किए, ताकि शायद शब्द से समझ में न आए, तो अनुभव से समझ में आ जाए, इसलिए कल्पना की। तैरने और बहने के विरोध को समझ लिया होगा। तैरना नहीं है, बह जाना है। तैरना एक अहंकार है, बह जाना समर्पण है। दूसरा प्रयोग हमने कियाः मिट जाने का, समाप्त हो जाने का। अपने को बचाने की कोशिश बड़ा पागलपन है। जो अपने को बचाने की कोशिश में लगता है, वह समग्र को कभी भी न जान सकेगा। अगर कोई बूंद बूंद ही रहना चाहे, तो फिर सागर को नहीं जान सकती। बूंद को सागर को जानना है तो मिटना पड़ेगा। लेकिन बूंद सागर में खोकर मिटती नहीं है, सागर हो जाती है। छोटे से और विराट हो जाती है। असल में छोटे हम हैं। अगर बड़े को जानना हो, तो मिटना पड़ेगा। छोटा होना मिटे, तो ही बड़ा होना हो सके। क्षुद्र हम हैं, सीमा में बंधे हम हैं। सीमाएं टूटें, तो ही हम असीम हो सकें। लेकिन हम सब अपने को बचाने में लगे हैं।
तो ध्यान की दूसरी कड़ी हैः अपने को बचाना नहीं; छोड़ देना, मिट जाना, समाप्त हो जाना। निश्चित ही, जो मिट सकता है, वही मिटेगा। जो नहीं मिट सकता, वह नहीं मिटेगा। और हमारे भीतर दोनों हैं--वह भी जो मिट सकता है, वह भी जो नहीं मिट सकता है। जो मिट सकता है, वह मिट जाएगा, वह मिटेगा ही। हम चाहें, चाहे न चाहें। जो नहीं मिट सकता है, वह हम चाहें तो भी नहीं मिट सकता है। वह रहेगा, रहेगा। तो दूसरा प्रयोग हमने कियाः चिता पर चढ़ जाने का, जल जाने का, राख हो जाने का। ध्यान में बहुत जरूरी है; क्योंकि मिटना पड़ेगा, मरना पड़ेगा। ध्यान स्वेच्छा से लाई गई मृत्यु का ही नाम है। तीसरा प्रयोग हमने कियाः तथाता का। तथाता का अर्थ हैः चीजें जैसी हैं, उनकी स्वीकृति। और यदि कोई स्वीकार कर ले, तो फिर अशांत नहीं हो सकता।
अशांति आती है अस्वीकार से। तनाव आता है अस्वीकार से। हमारी जिंदगी
की सब परेशानी और चिंता आती है अस्वीकार से।
एक बैलगाड़ी जाती हो, एक शराबी बैठा हो, साथ में आप भी बैठे हुए हैं और बैलगाड़ी उलट जाए, तो ध्यान रखना, आपको चोट लगेगी, शराबी को चोट नहीं लगेगी। और बड़े मजे की बात है, चोट शराबी को लगनी चाहिए थी; क्योंकि शराबी पीए हुए था। हमें क्यों चोट लग गई? हम तो शराब न पीए हुए थे। लेकिन गाड़ी उलटे तो शराबी बच जाए और आपको चोट लग जाए। क्योंकि शराबी सब स्वीकार कर लेता है; होश ही नहीं है विरोध करने का। वह गिरता है तो पूरी तरह ही गिर जाता है। गिरने से भी बचने का भाव नहीं होता। जो होश में है, वह बचेगा। गाड़ी उलटेगी तो तन जाएगा, बचने की चेष्टा में लग जाएगा। हड्डियां खिंच जाएंगी, सजग हो जाएगा। तनी हुई हड्डियां चोट खा जाएंगी और टूट जाएंगी। शराबी रोज सड़क पर गिरता है, चोट नहीं खाता। आप गिरें तो मुश्किल में पड़ जाएं। रोज बच्चे गिरते हैं और चोट नहीं खाते। हम गिरें तो हड्डियां टूट जाएं। बच्चे गिरने को भी स्वीकार कर लेते हैं, उसको भी राजी हो जाते हैं। और जब कोई गिरने को भी राजी हो जाए तो फिर चोट लगनी बहुत मुश्किल हो जाए। उसके राजी होने के कारण विरोध बंद हो जाता है।
जिंदगी को स्वीकार के भाव से जो लेता है, जिंदगी उसे चोट नहीं पहुंचा पाती। और जो जिंदगी का विरोध करता है, उसे जिंदगी बहुत चोट पहुंचा जाती है, बहुत घाव कर जाती है, बहुत अल्सर बना जाती है। जिंदगी को जो पूरी तरह स्वीकार कर लेता है, जैसी जिंदगी आती है, द्वार खोल कर राजी हो जाता है, उसे जिंदगी कभी चोट नहीं पहुंचा पाती।

इसलिए तीसरा प्रयोग हैः स्वीकार का। क्योंकि परमात्मा को जानना है अगर, तो जीवन को पूरी तरह स्वीकार करके ही तो जान सकेंगे। जिसे हम अस्वीकार करते हैं, उससे हमारी दुश्मनी हो जाती है। जिसका हम विरोध करते हैं, उसके लिए हमारे द्वार बंद हो जाते हैं। जिसके हम खिलाफ खड़े हो जाते हैं, हमारा चित्त क्लोज्ड हो जाता है, बंद हो जाता है। फिर वह खुलता नहीं। लेकिन जब हम स्वीकार कर लेते हैं, तो सब खुल जाता है। उस खुले मन में ही अवतरण होता है, वही द्वार बनता है। इसलिए तीसरा चरण हैः तथाता, सब स्वीकृति।
अब ध्यान में हम तीनों का एक साथ प्रयोग करेंगे।
ध्यान के प्रयोग में बैठने के पहले और मैं चाहूंगा थोड़े दूर-दूर हट जाएं, ताकि--अब पूरा ही छोड़ना पड़ेगा शरीर को, वह गिर भी सकता है--गिर जाए तो चिंता नहीं लेनी है। अगर उसे रोकने में लग गए, तो वहीं अटक जाएंगे। वह गिरता हो तो गिर जाए। इसलिए अब और थोड़े फासले पर हट जाएं। कुछ और मित्र आ गए हैं, वे वहां जो खुली जगह है, वहां थोड़े हट जाएं चुपचाप बिना आवाज किए, ताकि कोई गिरे तो किसी के ऊपर न गिर जाए, या किसी को अपने को सम्हालना न पड़े। और वहां कुछ पीछे मित्र बैठे हैं, वे अगर उनको प्रयोग न भी करना हो, तो कम से कम बातचीत न करें। वहां पीछे बात न करें और थोड़ा दूर हट कर बैठें। कोई लेटना चाहे तो पहले ही चुपचाप किसी कोने में जाकर लेट जा सकता है।
अब हम प्रयोग करेंगे।
पहला, आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद करें, शरीर को ढीला छोड़ दें। और मैं थोड़ी देर सुझाव देता हूं, मेरे साथ अनुभव करें, ताकि शरीर पूरा-पूरा ढीला छूट जाए। मैं सुझाव देता हूं--शरीर शिथिल हो रहा है, आप मेरे साथ अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है। और शरीर को शिथिल छोड़ते जाएं, छोड़ते चले जाएं। चाहे वह गिरे तो गिर जाए, झुके तो झुक जाए, आप रोक कर मत रखें। शरीर शिथिल हो रहा है, अनुभव करें। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ दें, जरा भी पकड़ें नहीं। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है, जैसे उसमें कोई प्राण ही न हों।
छोड़ें, बिल्कुल छोड़ें, जैसे नदी में बह गए थे, ऐसा शिथिलता में बह जाएं। छोड़ दें... छोड़ दें--शरीर शिथिल हो रहा है... एक-एक अंग ढीला और शिथिल होता जा रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल होता जा रहा है... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... छोड़ दें, पकड़ें नहीं, झुकता हो झुके, गिरता हो गिरे, जो होना हो हो, शरीर पर आप अपनी पकड़ न रखें। शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... देखें, छोड़ें, जरा भी पकड़ न रखें। शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है...
श्वास शांत होती जा रही है... श्वास को भी छोड़ दें। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... छोड़ दें, श्वास को भी ढीला छोड़ दें। श्वास शांत हो रही है... अनुभव करें, भाव करें, श्वास शांत होती जा रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत होती जा रही है... श्वास के शांत होते-होते शरीर और शिथिल हो जाएगा, बिल्कुल ढीला हो जाएगा। शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाएगा। श्वास शांत होती जा रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, वह धीरे-धीरे शांत होते-होते इतनी शांत हो जाती है कि पता ही नहीं चलता कब आई, कब गई। उसकी पहचान ही बंद हो जाती है। जैसा चिता पर चढ़ गए थे और मिट गए थे, ऐसा ही श्वास को शांत हो जाने दें, मिट जाने दें। श्वास ही हमारा आधार बना है हमारे अहंकार का, उसे छोड़ दें ढीला--ढ़ीला--ढ़ीला... फिर वह खो जाए... खो जाए... श्वास शांत हो गई है... श्वास शांत हो गई है...
और अब तीसरा कदम तथाता का। अब सब स्वीकार में डूब जाएं। जो है, है। उसके साक्षी बने रहें। पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम सुन रहे हैं। धूप गरम है, हम अनुभव कर रहे हैं। रास्ते पर शोरगुल है, हम उसके ज्ञाता हैं। पैर में दर्द हो रहा है, हम जान रहे हैं। शरीर गिर रहा है, हम पहचान रहे हैं, रोक

नहीं रहे हैं। हम कर्ता नहीं, सिर्फ ज्ञाता हैं। शरीर गिरे तो उसे भी जान रहे हैं। शरीर झुके तो उसे भी जान रहे हैं। आंख से आंसू बहने लगें तो उसे भी जान रहे हैं। रोना निकलने लगे उसे भी जान रहे हैं। जो भी हो रहा है, हो रहा है। हम रोकने वाले नहीं, करने वाले नहीं, सिर्फ जान रहे हैं, जान रहे हैं, जान रहे हैं। और सब स्वीकार है। और जो भी जान रहे हैं वह स्वीकार है, उससे कोई इनकार नहीं है। अब दस मिनट के लिए सर्व स्वीकार में अपने को छोड़ दें। और धीरे-धीरे सब शून्य हो जाएगा, सब मिट जाएगा, सब खो जाएगा। उसी शून्य में पहली दफे परमात्मा के चरण सुनाई पड़ते हैं। उसका दीया जलता हुआ मालूम पड़ता है। उसकी वीणा का संगीत आता हुआ मालूम पड़ता है। छोड़ दें... ।
अब मैं चुप हो जाता हूं। दस मिनट के लिए साक्षीभाव में, स्वीकार भाव में लीन हो जाएं।
साक्षी बने रहें, जानते रहें। हवाएं बह रही हैं, हम जान रहे हैं। पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम जान रहे हैं। वृक्षों के पत्तों में शोरगुल है, हम जान रहे हैं। हम सिर्फ जान रहे हैं और स्वीकार है। हम मात्र ज्ञाता, मात्र साक्षी हैं। देख रहे हैं, जान रहे हैं, पहचान रहे हैं और सब स्वीकार है। धीरे-धीरे भीतर शून्य हो जाएगा। धीरे-धीरे भीतर शून्य बन जाएगा। उसी शून्य के मंदिर में प्रभु का साक्षात्कार होता है। जानते रहें, सुनते रहें, पहचानते रहें, साक्षीमात्र, सर्व स्वीकार से भरे।
छोड़ दें... छोड़ दें... खो जाएं... बह जाएं--इस होने में, इस अस्तित्व में पूरी तरह लीन हो जाएं। हम इसके ही हिस्से हैं। ये हवाएं, यह सूरज, ये वृक्ष अलग नहीं हैं, हम सब एक हैं। पूरी तरह छोड़ दें। जानते रहें, स्वीकार करें। और मन धीरे-धीरे शून्य हो जाएगा। उस शून्य मन में आनंद के झरने फूट पड़ेंगे। उस शून्य मन में आनंद के दीये जल जाएंगे। उस शून्य मन में आनंद की वीणा बजने लगेगी। छोड़ दें, सब भांति अपने को छोड़ दें। बह जाएं, मिट जाएं, साक्षीमात्र रह जाएं।
मन शून्य हो गया है, मन शांत हो गया है, मन बड़ी शीतलता और आनंद से भर गया है।
साक्षी रहें... साक्षी रहें... सर्व स्वीकार, जो है, है। सब स्वीकार कर लें और मात्र साक्षी रह जाएं। आपके आनंद में हवाएं भी आनंदित, वृक्ष भी आनंदित, सूरज भी आनंदित। सिर्फ जानते रहें, स्वीकार कर लें, सब स्वीकार कर लें और इस सबमें खो जाएं।
मन शून्य हो गया है, मन शांत हो गया है, मन आनंद से भर गया है, इसी शांत आनंद से भरे मन में प्रभु की मौजूदगी का पता चलता है। वह चारों तरफ अनुभव होने लगता है। सूरज की किरणें उसकी किरणें हो जाती हैं। हवाओं के झोंके उसके झोंके हो जाते हैं। वृक्षों के पत्तों के गीत उसके गीत हो जाते हैं। पक्षियों का शोरगुल उसका शोरगुल और पुकार बन जाती है। अब अंतिम रूप से उसकी मौजूदगी को अनुभव करें, चारों तरफ वही मौजूद है, सबमें वही मौजूद है। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास में वही मौजूद है, प्रत्येक श्वास बहुत आनंद से भरी हुई मालूम होगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास में वही मौजूद है। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। वही भीतर जाता, वही बाहर जाता। सब तरफ वही है--बाहर भी, भीतर भी। धीरे- धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। अगर आंख न खुले, तो दोनों आंखों पर हाथ रख लें, फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। आंख बंद करके भी वही मौजूद था, आंख खोल कर भी चारों तरफ वही मौजूद है। धीरे-धीरे आंख खोल लें। जो लोग गिर गए हैं, वे थोड़ी गहरी श्वास लेंगे फिर बहुत धीरे-धीरे उठेंगे। जल्दी नहीं करेंगे। उठते न बने, तो लेटे हुए और थोड़ी श्वास लें फिर बाद में उठें। और धीरे-धीरे, झटके से नहीं।
रात्रि इस प्रयोग को सोते समय करें और फिर सो जाएं, ताकि कल सुबह जब यहां आएं तो रात भर की गहरी शांति आपके साथ हो और हम और प्रयोग में गहरे उतर सकें। रात सोते समय बिस्तर पर ही प्रयोग को करें और सो जाएं, ताकि रात पूरी रात वही शांति, वही आनंद भीतर सरकता रहे। और सुबह जब आप यहां आएं तो हम और गहरे जा सकें।

जीवन ही है प्रभु
तीसरा प्रवचन

प्रभु की पुकार

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि यदि ध्यान से जीवन में शांति हो जाती है, तो फिर ध्यान सारे देश में फैल क्यों नहीं जाता है?

पहली बात तो यह कि बहुत कम लोग हैं पृथ्वी पर जोशांत होना चाहते हैं। शांत होना बहुत कठिन है। असल में शांति की आकांक्षा को उत्पन्न करना ही बहुत कठिन है। और कठिनाई शांति में नहीं है। कठिनाई इस बात में है कि जब तक कोई आदमी ठीक से अशांत न हो जाए तब तक शांति की आकांक्षा पैदा नहीं होती। पूरी तरह अशांत हुए बिना कोई शांत होने की यात्रा पर नहीं निकलता है। और हम पूरी तरह अशांत नहीं हैं। यदि हम पूरी तरह अशांत हो जाएं तो हमें शांत होना ही पड़े। लेकिन हम इतने अधूरे जीते हैं कि शांति तो बहुत दूर, अशांति भी पूरी नहीं हो पाती।
हमारी बीमारी भी इतनी कम है कि हम चिकित्सा की तलाश में भी नहीं निकलते। जब बीमारी बढ़ जाती है तो चिकित्सक की खोज शुरू होती है। लेकिन हम बचपन से ही इस भांति पाले जाते हैं कि हम कुछ भी पूरी तरह नहीं कर पाते। न तो हम क्रोध पूरी तरह कर पाते हैं कि अशांत हो जाएं। न ही चिंता पूरी तरह कर पाते हैं कि मन व्यथित हो जाए। न हम द्वेष पूरी तरह कर पाते हैं, न घृणा पूरी तरह कर पाते हैं कि मन में आग लग जाए और नरक पैदा हो जाए। हम इतने कुनकुने जीते हैं कि कभी आग जल ही नहीं पाती और इसलिए पानी खोजने भी हम नहीं निकलते जो उसे बुझा दे। हमारा कुनकुना जीना ही, ल्यूक वार्म लिविंग ही हमारी कठिनाई है।
जब कोई मुझसे पूछता है कि जब शांत होना इतना आसान है तो बहुत लोग शांत क्यों नहीं हो जाते। तो पहली बात तो यह है कि वे अभी ठीक से अशांत ही नहीं हुए हैं। उन्हें अशांत होना पड़ेगा। शांत तो आदमी क्षण भर में हो जाता है, अशांत होने के लिए जन्म-जन्म लेने पड़ते हैं, लंबी यात्रा है। यह इतने जन्मों की हमारी जो यात्रा है, यह शांति की यात्रा नहीं है, शांति तो क्षण भर में घटित हो जाती है। यह इतने जन्मों की यात्रा हमारे अशांत होने की यात्रा है जो हम पूरी तरह अशांत हो जाते हैं। जब अशांति की चरम अवस्था आ जाती है, क्लाइमेक्स आ जाता है, तब हम लौटना शुरू करते हैं।
बुद्ध एक गांव में गए--और जो आज मुझसे आपने पूछा है एक आदमी ने उनसे भी आकर पूछा। और उस आदमी ने उनसे कहा था कि चालीस वर्षों से निरंतर आप गांव-गांव घूमते हैं, कितने लोग शांत हुए, कितने लोग मोक्ष गए, कितने लोगों का निर्वाण हो गया? कुछ गिनती है? कुछ हिसाब है? वह आदमी बड़ा हिसाबी रहा होगा। बुद्ध को उसने मुश्किल में डाल दिया होगा क्योंकि बुद्ध जैसे लोग खाताबही लेकर नहीं चलते हैं कि हिसाब लगा कर रखें कि कौन शांत हो गया, कौन नहीं शांत हो गया। बुद्ध की कोई दुकान तो नहीं है कि हिसाब रखें। बुद्ध मुश्किल में पड़ गए होंगे। उस आदमी ने कहाः बताइए, चालीस साल से घूम रहे हैं, क्या फायदा घूमने का? बुद्ध ने कहाः एक काम करो, सांझ आ जाना, तब तक मैं भी हिसाब लगा लूं। और एक छोटा सा काम है, वह भी तुम कर लाना। फिर मैं तुम्हें उत्तर दे दूंगा। उस आदमी ने कहाः बड़ी खुशी से, क्या काम है वह मैं कर लाऊंगा? और सांझ आ जाता हूं, हिसाब पक्का रखना। मैं जानना ही चाहता हूं कि कितने लोगों को मोक्ष के दर्शन हुए? कितने लोगों ने परमात्मा पा लिया? कितने लोग आनंद को उपलब्ध हो गए? क्योंकि जब तक मुझे यह पता न लग जाए कि कितने लोग हो गए हैं, तब तक मैं निकल भी नहीं सकता यात्रा पर। क्योंकि पक्का पता तो चल जाए कि किसी को हुआ भी है या नहीं हुआ।
बुद्ध ने उससे कहा कि यह कागज ले जाओ और गांव में एक-एक आदमी से पूछ आओ, उसकी जिंदगी की आकांक्षा क्या है, वह चाहता क्या है? वह आदमी गया। उसने गांव में--एक छोटा सा गांव था, सौ-पचास लोगों की छोटी सी झोपड़ियां थीं-- उसने एक-एक घर में जाकर पूछा। किसी ने कहा कि धन की बहुत जरूरत है, और किसी

ने कहा कि बेटा नहीं है, बेटा चाहिए। और किसी ने कहा, और सब तो ठीक है लेकिन पत्नी नहीं है, पत्नी चाहिए। किसी ने कहा, और सब ठीक है, लेकिन स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, बीमारी पकड़े रहती है, इलाज चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए। कोई बूढ़ा था, उसने कहा कि उम्र चुकने के करीब आ गई, अगर थोड़ी उम्र मिल जाए और तो बस, और सब ठीक है। सारे गांव में घूम कर सांझ को जब वह लौटने लगा तो रास्ते में डरने लगा कि बुद्ध से क्या कहूंगा जाकर। क्योंकि उसे ख्याल आ गया कि शायद बुद्ध ने उसके प्रश्न का उत्तर ही दिया है। गांव भर में एक आदमी नहीं मिला जिसने कहा, शांति चाहिए; जिसने कहा, परमात्मा चाहिए; जिसने कहा, आनंद चाहिए। बुद्ध के सामने खड़ा हो गया। सुबह बुद्ध मुश्किल में पड़ गए कि सांझ वह आदमी मुश्किल में पड़ गया।
बुद्ध ने कहाः ले आए हो? उसने कहाः ले तो आया हूं। बुद्ध ने कहाः कितने लोग शांति चाहते हैं? उस आदमी ने कहाः एक भी नहीं मिला गांव में। बुद्ध ने कहाः तू चाहता है शांति? तो रुक जा। उसने कहाः लेकिन अभी तो मैं जवान हूं, अभी शांति लेकर क्या करूंगा? जब उम्र थोड़ी ढल जाए तो मैं आऊंगा आपके चरणों में, अभी तो वक्त नहीं है, अभी तो जीने का समय है। तो बुद्ध ने कहा, फिर पूछता है वही सवाल कि कितने लोग शांत हो गए? उसने कहा, अब नहीं पूछता हूं। कोई किसी कोशांत नहीं कर सकता, लेकिन हम शांत हो सकते हैं। पर अशांत
हो गए हों तभी। असल में हम अशांत ही नहीं हो पाते हैं, चरम नहीं हो पाती अशांति। बीमारी वहां नहीं पहुंच जाती जहां बीमारी टूट जाती हो। हमने कुछ भी कभी पूरी तरह नहीं किया है। इसलिए मेरी दृष्टि में हिसाब और है। मेरी दृष्टि में हिसाब यह है कि आने वाली जो मनुष्यता होगी उसमें हम एक-एक बच्चे को पूरी तरह क्रोध करना सिखाएंगे। यह नहीं सिखाएंगे बचपन से कि क्रोध बुरा है। क्योंकि क्रोध बुरा है, इसका सिर्फ एक ही परिणाम होता है, क्रोध तो नहीं मिटता केवल क्रोध अधूरा लटका रह जाता है। न वह पूरा हो पाता, न वह मिटता। जिंदगी भर क्रोध, और क्रोध, और क्रोध--क्रोध भी और पश्चात्ताप भी। आदमी को हमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। क्रोध भी नहीं मिटता और क्रोध के लिए पश्चात्ताप भी करना पड़ता है। क्रोध एक बीमारी है, पश्चात्ताप दूसरी बीमारी है। क्रोध करो, फिर दुखी होओ, फिर पछताओ, फिर क्रोध करो। फिर दुखी होओ, फिर पछताओ, फिर एक विसियस सर्कल, एक चक्कर जो जिंदगी भर चलता है। सुबह क्रोध करो, सांझ पछताओ, रात भर में फिर तैयारी करो, सुबह फिर क्रोध करो, दिन भर फिर पछताओ। रात भर में फिर तैयारी करो, और ऐसा ही जिंदगी भर चलता है। कितनी बार आप पछताए? लेकिन पछताने से क्या बना- बिगड़ा?
पछताने से सिर्फ एक फायदा होता है कि पछता कर आप फिर पुरानी अवस्था में पहुंच जाते हैं जहां क्रोध के पहले थे ताकि अब फिर क्रोध कर सकें। पछताना सिर्फ क्रोध को लीपना-पोतना है। रिपेंटेंस, पछतावा, प्रायश्चित, वह जो हमारे अहंकार को चोट लग गई है। मैंने किसी को गाली दे दी है, अब मैं क्रोध से भर गया हूं। मेरे अहंकार को बड़ी चोट लग गई, क्योंकि मैं अपने को भला आदमी समझता था, जो गाली नहीं दे सकता। जो क्रोध नहीं कर सकता, अब क्रोध कर दिया, अब गाली दे दी। अब मैं पछता कर फिर भला आदमी होने की कोशिश करता हूं। पछता कर मैं कहता हूं, यह कुछ भूल हो गई, कुछ नासमझी हो गई। मुझसे कैसे हो सकता है? कुछ बेहोशी हो गई। वह तो कुछ स्थिति ऐसी थी कि मुझ से निकल गया, अन्यथा मुझ से कैसे निकल सकता है। मैं क्षमा भी मांगता हूं, जाकर हाथ भी जोड़ता हूं कि मुझे माफ कर दो। मैं असल में अपने बिखरे अहंकार कोफिर से जुड़ाने की कोशिश कर रहा हूं। जब मैं माफ हो जाऊंगा और पछता लूंगा और दुखी हो लूंगा और एक दिन उपवास कर लूंगा, पछतावे में दूसरे दिन मैं फिर पुरानी जगह वापस लौट जाऊंगा। अब मैं फिर अच्छा आदमी हो गया। जो न गाली देता है, न क्रोध करता है। अब मैं फिर गाली देने की तैयारी कर लिया। अब मैं गाली दे सकता हूं। अब मैं क्रोध कर सकता हूं। मैं फिर अच्छा आदमी हो गया। अच्छा आदमी हुआ ही इसलिए कि तब फिर गाली देने की सुविधा जुटा सकूं।
हम बच्चों को सिखाते हैं, क्रोध बुरा है, क्रोध पाप है, क्रोध मत करो। परिणाम यह नहीं होता है कि क्रोध न करते हों। यह तो हो नहीं सकता। सिर्फ क्रोध अधूरा रह जाता है, कभी पूरा नहीं हो पाता। और कभी वे क्रोध की पीड़ा

को पूरा अनुभव नहीं कर पाते, वे क्रोध की अग्नि से पूरे गुजर नहीं पाते और तब, अक्रोध तक पहुंचने का सवाल नहीं उठता। तब शांति की खोज का सवाल नहीं उठता। अभी जो अशांत ही नहीं हो सका है, वह शांत कैसे हो सकता है। अभी जिसकी इतनी भी पात्रता नहीं है कि अशांत हो जाए, अभी उसकी इतनी पात्रता कैसे होगी कि वह शांत हो सके। ये बातें उलटी लगेंगी देखने में। लेकिन मैं आपसे यह कह रहा हूं कि जो ठीक से अशांत हो सकता है वही केवल शांति के मार्ग पर यात्रा करता है। और जो ठीक से क्रोध करके क्रोध को जी लेता है; उसके पूरे जहर को... उसके कांटे-कांटे में छिद जाता है; उसकी आग की लपटों में जल जाता है; जो क्रोध को पूरी तरह जी लेता है; क्रोध को पूरी तरह पी लेता है, वह फिर दुबारा क्रोध करने में असमर्थ हो जाता है। वह शांति की यात्रा पर निकल जाता है।
मेरी दृष्टि में बच्चों को सिखाया जाना चाहिए कि ठीक से वे कैसे क्रोध करें, जोर से, ठीक से, पूर्णता से, ताकि क्रोध का पूरा अनुभव उन्हें बता दे कि क्रोध करना अपने को जलाना है। ताकि उन्हें दर्शन हो जाए क्रोध का, क्रोध की पूरी प्रतीति हो जाए, क्रोध के कीड़े उनको दिखाई पड़ जाएं और क्रोध की जहरीली लपटें उन्हें चारों तरफ से घेर लें, उन्हें दर्शन हो जाए कि यह है क्रोध। और जिस आदमी ने एक दफे पूरे क्रोध को देख लिया वह दुबारा क्रोध करने की क्षमता नहीं जुटाता। कौन पागल है जो अपने को आग में डालता है। लेकिन हम आग में ही नहीं डाल पाए इसलिए निकलने का सवाल नहीं।
हमारे सारे बुनियादी संस्कार गलत हैं, और उनकी वजह से हम अशांत ही नहीं हो पाते तोशांत होने की बात कैसे उठेगी। निश्चित ही, ध्यान से शांति उपलब्ध हो सकती है, लेकिन ध्यान की तरफ वे ही आकर्षित होंगे जो अशांत हो चुके हैं। हम अशांत ही नहीं हुए हैं पूरी तरह से। वहां नहीं पहुंच गए हैं जहां अशांति हमें जिंदगी को मिटाती हुई मालूम पड़ती हो। हम उस कगार पर नहीं पहुंच गए हैं जहां आगे खड्ड है और एक कदम उठाएंगे तो अंतहीन खड्ड में गिर जाएंगे। हम वहां नहीं पहुंच गए हैं। अगर हम वहां पहुंच गए होते तो हम वापस लौटेंगे। कौन गिरेगा उस खड्ड में जहां अंतहीन गहराइयां हों। और जहां मृत्यु के सिवाय कुछ दिखाई न पड़ रहा हो।
आपने कभी ऐसी अशांति का अनुभव किया है जहां से एक कदम और आगे उठाने पर सिवाय मृत्यु के कुछ शेष न रह जाए? अगर नहीं किया है तो अभी आप अशांत ही नहीं हुए हैं। अभी आप अशांति के रास्ते पर भी आधे ही पहुंचे हैं। और गुरुजन मिल जाते हैं इसी आधे रास्ते पर कहने वाले, कि चलिए हम आपकोशांत होने का मार्ग बताए देते हैं, शांत हो जाइए। तो आपके कदम तो अशांति की तरफ बढ़ते रहते हैं और आप सोचते हैं कि चलो रास्ते चलते अगर शांति भी मिलती हो तो दो हाथ उस पर भी मार लिए जाएं। चलते रहते हैं अशांति की तरफ क्योंकि अभी अशांति का रस ही नहीं ले पाए कि उससे मुक्त हो सकें।
असल में जिस चीज से भी मुक्त होना हो उसके पूरे रस का अनुभव जरूरी है। अगर बुराई से भी मुक्त होना हो तो बुराई की गहराइयों में उतरना जरूरी है। असल में पापी हुए बिना कोई कभी महात्मा न हुआ है, न हो सकता है। असल में जिसे आकाश की ऊंचाइयां छूनी हों, उसे पाताल की गहराइयां भी छूनी होती हैं।
देखे हैं दरख्त, जो आकाश की तरफ उठते हैं और चांद-तारों को छूते हुए मालूम पड़ने लगते हैं। वह उनकी जड़ें नीचे पाताल में उतर जाती हैं, तभी वे ऊपर उठ पाते हैं। जिस दरख्त को आकाश छूना हो, उस दरख्त को पाताल भी छूना ही पड़ता है। जितनी जड़ नीचे गहरी जाती है उतना दरख्त ऊपर ऊंचा चला जाता है।
हम कुछ ऐसे लोग हैं कि जड़ें ही पूरी गहरी नहीं जा पातीं, आकाश की तरफ उठने का सवाल कहां है? और ध्यान रहे, जितनी नीचे गहराई होगी उतनी ही ऊपर ऊंचाई हो सकती है, इससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है। तो हमें जो संस्कृति मिली है अधूरी, इंपोटेंट, नपुंसक, जो कुछ भी करना नहीं सिखाती; जो ठीक अर्थों में क्रोध भी करना नहीं सिखाती--अधूरे, अधजले, न इस पार, न उस पार, आदमी अटका रह जाता है। मैं तो कहता हूं, क्रोध करना तो ठीक से करना, एक ही बार कर लेना ताकि बार-बार करने की जरूरत न रहे। और चिंतित होना हो तो ठीक से चिंतित हो लेना, और द्वेष करना हो, दुश्मनी करनी हो तो ठीक से ही कर लेना क्योंकि ठीक से कर लेना ही बाहर हो जाने का रास्ता है। लेकिन कुछ भी हमने

ठीक से नहीं किया। इसलिए मैं कहता हूं, अशांत ही हम नहीं हैं। हां, जो अशांत हैं वे शांत हो सकते हैं।
इसलिए मुझे लगता है कि पश्चिम के मुल्कों में शांति की लहरें हर वर्ष बढ़ती चली जाएंगी। क्योंकि पश्चिम के लोग बड़े खुले दिल से अशांत हुए हैं। आज अमरीका में ध्यान के लिए जैसी अभीप्सा है, जैसी प्यास है, वैसी हमारे भीतर नहीं है। आज यूरोप में, यूरोप के बुद्धिमान वर्ग में जिस भांति योग की खोज है, समाधि की खोज है वैसी हमारे बुद्धिमान वर्ग में नहीं है। उसका कारण है। उन्होंने अगर अशांत भी होना चाहा है तो ठीक से वे अशांत हुए हैं। अगर उन्होंने भौतिकवादी होना चाहा है तो फिर उन्होंने कुछ बकवास नहीं सुनी, वे ठीक से भौतिकवादी हो गए हैं। और जब कोई आदमी ठीक से भौतिकवादी हो जाता है तो वह सीमा आ जाती है जहां से अध्यात्म शुरू होता है। लेकिन ठीक से भौतिकवादी ही कोई नहीं हो पाता हमारे मुल्क में, अध्यात्मवादी होना असंभव है। पहले कम से कम भौतिकवादी तो कोई हो जाए। वह भी नहीं हम हो पाते। तो हम अधूरे मकान बनाते हैं।
मैंने सुना है, एक फकीर के पास कोई पूछने गया था कि तुम कैसे उपलब्ध हो
गए परमात्मा को? तो उस फकीर ने कहा कि मैंने परमात्मा की फिकर ही न की। मैंने संसार की ही पूरी फिकर की। लेकिन जब मैं संसार में गहरा उतरा, और गहरा, और गहरा उतरा तो सीमा आ गई। और सीमा पर मुश्किल हो गई, फिर पीछे लौटना जरूरी हो गया।
उस आदमी ने कहाः मैं समझा नहीं। तो उसने कहाः आओ, मैं तुम्हें पास के
एक खेत पर ले चलता हूं। जैसा उस खेत का मालिक है, ऐसे दुनिया के लोग हैं। वह उसे खेत पर ले गया। उस खेत का मालिक बड़ा अदभुत होगा, ठीक आप जैसा होगा, हम जैसा होगा। उस खेत के मालिक ने खेत में आठ गड्ढे खोदे थे कुआं बनाने के लिए। आठ हाथ पहले एक गड्ढा खोदा, आधा खोदा, फिर छोड़ दिया; सोचा अब तक पानी नहीं आया, दूसरा गड्ढा खोदूं। फिर उसने खोदा, सोचा इसमें भी पानी नहीं आता; उसने तीसरा गड्ढा खोदा। उसने आठ गड्ढे खोदे थे, पूरा खेत खराब हो गया आठ गड्ढों में, लेकिन अभी कुआं नहीं खुदा था। फकीर ने कहा, देखते हो इस खेत के मालिक को? यह कभी कुआं न खोद पाएगा। क्योंकि यह पूरा खोदता ही नहीं है। खोदे तो पानी आ जाए, मिट्टी खत्म हो जाए। लेकिन अधूरा खोदता है, फिर दूसरा खोदना शुरू कर देता है, फिर तीसरा खोदना शुरू कर देता है। एक ही कुआं खोदने से काम हो सकता था, आठ से भी काम नहीं हुआ। क्योंकि कुआं तो आया नहीं, यह तो बीच से ही लौट आया था। और जितनी खुदाई इसने की उतनी खुदाई से एक कुआं कभी का खुद गया होता। खुदाई तो इसने काफी की। लेकिन अलग-अलग जगह की है, एक ही गड्ढे पर नहीं की।
हम भी उस खेत के मालिक जैसे लोग हैं। हम जिंदगी में जाते हैं, लेकिन कहीं भी हम पूरे नहीं गए। किसी भी आयाम में, किसी भी दिशा में हमारी गति पूरी नहीं है। अगर एक आदमी धन ही कमा ले पूरी तरह से तो धन से मुक्त हो जाएगा। लेकिन इधर धन कमाता है, उधर किताब में पढ़ता है कि धन बिल्कुल पाप है। इधर रोज किताब भी पढ़ता है, उस गुरु के पास भी जाता है जो धन को गाली दे रहा है और दिन भर दुकान में धन कमाता है और सांझ गुरु के चरणों में बैठ कर धन की निंदा सुनता है। ऐसे दोहरे गड्ढे खोदता है जो कभी पूरे नहीं हो पाते, क्योंकि उलटे गड्ढे कैसे पूरे हो सकते हैं। इधर स्त्रियों के पीछे भागता रहता है और उधर किताबों में ब्रह्मचर्य के उपदेश पढ़ता रहता है। वह उलटे गड्ढे खोदता है, वह कभी अर्थ नहीं लाता। तो दोनों काम साथ चलते हैं। दोनों काम ही साथ चलते रहते हैं।
यह जो हमने अधूरा-अधूरा आदमी पैदा किया है, इसकी वजह से कठिनाई पैदा
हो गई है। इसलिए हम पुरानी संस्कृतियों से दबे हुए लोग हैं। धार्मिक भी नहीं हो पा रहे हैं। अधार्मिक होने की हिम्मत ही खो दी है तो धार्मिक होने की हिम्मत तो बहुत बड़ी चीज है। मेरी बात आप समझ रहे हैं? अधार्मिक होने की हिम्मत तक हमारी नहीं है। झूठ बोलने तक की हिम्मत नहीं है, सच बोलना तो बहुत दूर की बात है। झूठ बोलने में भी हिम्मत की जरूरत पड़ती है। झूठ भी हर कोई नहीं बोल देता। झूठ बोलने तक में कमजोर हो गए हैं, और सच बोलने के उपाय खोज रहे हैं। सच बोलना तो बहुत हिम्मत की बात है। उसका तो मुकाबला ही नहीं

है। वह तो पूरी हिम्मत आए तभी कोई सच बोल सकता है। लेकिन जोझूठ बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, उनको हम कहते हैं कि ये बड़े सच बोलने वाले हैं। जो चोरी करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वे अचोर बन गए हैं। और जो हिंसा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वे अहिंसा के पुजारी हैं। सब हमने विकृत और उलटा कर लिया है। और अधूरा करके उलटा कर लिया है।
मेरी बात इसीलिए बहुत अजीब मालूम पड़ती है, क्योंकि मैं यह कहता हूं कि अगर धार्मिक होना हो तो पहले अधार्मिक होने की पूरी हिम्मत से यात्रा करो। रुकना मत, किसी के बुलाए मत रुकना, किसी के चिल्लाए मत रुकना। कहना कि अभी ठहरो, पहले इस यात्रा को हम पूरा कर ही लें। इसे हम जान लें कि यह अधर्म का आकर्षण क्या है। तुम कहते हो कि झूठ बुरा है, हम भी देख लें कि झूठ बुरा है या नहीं। और तुम कहते हो कि धन बुरा है, तो हम भी देख लें कि धन बुरा है या नहीं। निश्चित ही एक जगह आती है जहां धन मिट्टी हो जाता है। लेकिन उसके लिए कभी यह जगह नहीं आती जो धन की यात्रा में गया ही नहीं। जो पहले से ही रोक कर अपने को, साध कर संयम करके खड़ा हो गया हो। उस संयमी आदमी की बड़ी मुश्किल है।
संयमी आदमी से ज्यादा फजीहत किसी की भी नहीं है। क्योंकि उसका मन होता है उस तरफ जाने को और विचार होते हैं इस तरफ जाने को। वह ऐसा आदमी है, समझें, ऐसी बैलगाड़ी है जिसमें दोनों तरफ बैल जोत दिए हों और बैलगाड़ी को दोनों तरफ खींच रहे हैं। वह बैलगाड़ी कभी कहीं जा नहीं पाती। कभी दो फीट इधर जाती है, जरा बैल ताकतवर हो गए, दूसरे बैल सुस्ताने लगे, कभी दो फीट इधर आती है। वे बैल थक गए और इन बैलों ने खींच लिया। जिंदगी भर बस बैलगाड़ी इसी तरह हमारी होती रहती है। इधर थोड़ा अधर्म करते हैं, फिर मन डर जाता है, थोड़ा धर्म कर लेते हैं, फिर मन ऊब जाता है फिर थोड़ा अधर्म कर लेते हैं, बस ऐसा चलता रहता है। धर्म और अधर्म के बीच हम कभी भी एक यात्रा पर नहीं निकले। मेरी अपनी समझ यह है कि अधर्म का अनुभव ही धर्म में ले जाता है, अशांति
का अनुभव शांति में ले जाता है। हिंसा का अनुभव अहिंसा में ले जाता है। और भौतिकता का अनुभव अध्यात्म में ले जाता है। भोग का अनुभव योग का आधार बनता है। ये बातें उलटी दिखाई पड़ती हैं। ये उलटी नहीं हैं। यह जिंदगी का नियम है। इसलिए मैं इस प्रश्न के संदर्भ में जीवन का दूसरा नियम भी आपसे कह दूं। जीवन के गणित का दूसरा नियम यह है कि जो भी करना हो, पूरा करना। अधूरा करने के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। अधूरा करने के अतिरिक्त और कोई बुराई नहीं है। बुराई भी करनी हो तो पूरी करनी है। एक और बहुत मजे की बात इससे निकलती है और वह यह कि बुराई आप पूरी कर सकते हैं, भलाई आप कभी पूरी नहीं कर सकते हैं। इसलिए बुराई से मुक्त हो जाएंगे, भलाई से कभी मुक्त न होंगे। यह कभी ख्याल में न आया होगा कि बुराई बड़ी छोटी चीज है, उसका अंत बहुत जल्दी आ जाता है। लेकिन भलाई बहुत अनंत है, उसका अंत आता ही नहीं। इसलिए संसार से कोई ऊपर उठ सकता है, भौतिकवाद से ऊपर उठ सकता है। लेकिन धर्म और अध्यात्म के ऊपर कभी भी नहीं उठ सकता है। उसमें सिर्फ प्रवेश होता है, फिर अंत आता ही नहीं।
परमात्मा में सिर्फ प्रवेश होता है, अंत कभी नहीं आता। ऐसा कभी नहीं होता कि एक आदमी यह कह दे कि ठीक है अब, परमात्मा को भी पूरा जान लिया, अब। अब आगे। नहीं, ऐसा कभी होता नहीं। असल में बुराई वह है जिसका अंत आ जाता है, जिसकी बड़ी छोटी सी सीमा है।
इसे थोड़ा सोचें। अगर आप एक आदमी से दुश्मनी करें और पूरी दुश्मनी करें तो ज्यादा से ज्यादा अंत क्या हो सकता है, उस आदमी को मार डालें। और क्या हो सकता है? दुश्मनी अगर पूरी ही करे कोई मुझसे और मुझे मार डाले, यही कर सकता है न। आखिरे और क्या कर सकता है? लेकिन अगर कोई मुझसे मित्रता करे तो बड़ी लंबी यात्रा है। उसका अंत कभी भी नहीं आएगा। वह कुछ भी करता चला जाए, कुछ भी करता चला जाए लेकिन अंतिम मित्रता का क्या मतलब हो सकता है। मित्रता का कोई अंतिम मतलब नहीं हो सकता है। कितना ही करो, फिर भी करने को बाकी रह जाएगा। कितना ही करो, फिर भी शेष, फिर शेष रह जाता है। शत्रुता का अंत आ जाता है, मित्रता का कोई अंत नहीं है। अशांत आप हो जाएं, फिर कितनी देर अशांत रह सकते हैं? अगर एक आदमी को हम कहें, तुम अशांत रहो, कितनी देर

अशांत रह सकते हो? तो आप पाएंगे, घड़ी, आधा घड़ी में शिथिल हो जाएगा। करेगा क्या? क्योंकि अशांति इतनी शक्ति व्यय करवाती है कि आप बहुत देर अशांत नहीं रह सकते। न बहुत देर क्रोधित रह सकते हैं, लेकिन शांत होने का कोई अंत है? आप शांत कितने ही रह सकते हैं, उसका कोई अंत नहीं है। वह अंतहीन है। अशांति का अंत आ जाएगा, शांति का कोई अंत नहीं आएगा। शांत कितना ही रह सकते हैं, अशांत कितना ही नहीं रह सकते। क्योंकि अशांति एक तनाव है, तनाव में श्रम है, श्रम में शक्ति का व्यय है। शांति तनाव नहीं है, विश्राम है। शांति में कोई शक्ति का व्यय नहीं है। कोई तनाव नहीं है, कितना ही शांत रहा जा सकता है। प्रेम का कोई अंत नहीं है, घृणा का अंत है। लेकिन हम घृणा के ही अंत पर नहीं पहुंचे जिसका अंत है; हम अशांति के ही अंत पर नहीं पहुंचे जिसकी सीमा है। तो हम शांति की खोज में नहीं निकल पाएंगे।
तो मैं आपसे नहीं कहता हूं कि शांति की खोज पर निकल जाइए, मैं तो यह कहता हूं, ठीक से अशांत ही हो जाइए। मंद-मंद मत चलिए, धीमे-धीमे मत चलिए, ठीक से हो जाइए। अशांति ही आपको धक्का दे देगी। कोई गुरु धक्का नहीं दे सकता। अशांति ही आपको धक्का दे देगी। वह अंतिम धक्का जोशांति की यात्रा पर ले जा सकता है।
ध्यान तोशांति ला सकता है। लेकिन शांति की तरफ वे आते हैं जो अशांत हो
गए हैं। अगर आप अशांत हो गए हैं तो अब कोई उपाय न रहेगा, आपको ध्यान की तरफ जाना ही पड़ेगा। किसी भी द्वार से आप ध्यान की यात्रा करेंगे ही। बचाव नहीं है कोई।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि ईश्वर को खोया नहीं, सिर्फ भूल गए हैं। और आप कहते हैं, ईश्वर से ही हम आए हैं और ईश्वर में ही चले जाएंगे, और फिर यह भी कहते हैं कि ईश्वर और हम एक हैं। ये बातें तो बड़ी उल्टी हैं। अगर हम एक ही हैं तो ईश्वर से आना कैसा और जाना कैसा? ये तो बातें बड़ी उलटी मालूम पड़ती हैं।
सागर में लहर उठती है और गिरती है। उठती है तब भी सागर से दूर नहीं होती और गिरती है तब भी दूर नहीं होती, फिर भी उठती है और गिरती है। सागर की लहर सागर के साथ एक ही है, सागर से जरा भी अलग नहीं है। सागर की लहर को आप सागर से अलग करना भी चाहेंगे तो नहीं कर सकेंगे। यह बड़े मजे की बात है, सागर तो बिना लहर के हो सकता है लेकिन लहर बिना सागर के नहीं हो सकती। सागर को कोई अड़चन नहीं है कि लहर के बिना न हो सके, लहर के बिना हो सकता है; लेकिन लहर, लहर सागर के बिना नहीं हो सकती।
इसलिए तीन बातें ख्याल रखने जैसी हैं--पहली बात, लहर सागर के बिना नहीं हो सकती। इसलिए सागर मूल है, और लहर मूल नहीं है। लहर आती है और जाती है, सागर है। सागर न आता है, न जाता है। लहर कभी जन्मती है, कभी मरती है। सागर न जन्मता है और न मरता है। सागर है। सागर के लिए हम अतीत या भविष्य का प्रयोग नहीं कर सकते हैं, सागर के लिए सदा वर्तमान का ही, प्रेजेंट टेंस का ही उपयोग करना पड़ेगा। हम ऐसा नहीं कह सकते कि सागर था। हम ऐसा नहीं कह सकते कि सागर होगा। हम ऐसा ही कह सकते हैं, सागर है। क्योंकि था उसको कह सकते हैं जो फिर नहीं हो जाए। होगा उसको कह सकते हैं जो अभी न हो। हां, लहर को कह सकते हैं--थी, है, होगी; सागर को नहीं कह सकते। सागर सदा है। सागर सदा वर्तमान है।
ध्यान रहे, अतीत, भविष्य और वर्तमान में वर्तमान परमात्मा का काल है; भविष्य और अतीत हमारे काल हैं। वर्तमान हमारा काल नहीं है। वर्तमान परमात्मा का है, परमात्मा हमेशा वर्तमान में है। ईश्वर था, ऐसा कहने का कोई भी अर्थ नहीं होता। ईश्वर है। ईश्वर होगा, इसका भी कोई अर्थ नहीं होता। ईश्वर है। सागर से समझने की थोड़ी कोशिश करें। सागर से लहर एक है। लेकिन फिर भी उठती है और गिरती है। तो परमात्मा से हम एक हैं, और आते हैं जाते हैं। कठिनाई क्या है? अड़चन क्या है? क्यों नहीं आ सकते और जा सकते? क्यों नहीं उठ सकते और गिर सकते? लेकिन आने-जाने से हमें ऐसा ख्याल आता है कि आने-जाने का मतलब है, अलग हो गए। लहर जब उठती है तब अलग है सागर से? और लहर नहीं उठती है तब एक है और जब उठती है तब अलग है? नहीं, जब लहर उठती है तब भी एक है। तब भी अलग नहीं है। हम जब आते हैं तब उसका मतलब इतना ही है कि हम

लहर की भांति उठते हैं चेतना के सागर में। चेतना के सागर में, वह जो कांशसनेस का सागर है, उसमें हम उठते हैं और गिरते हैं। अलग लेकिन हम नहीं होते हैं। लेकिन उठने और गिरने में अलग होने का भ्रम पैदा हो सकता है। अगर लहर को भी चेतना हो तो लहर उठते वक्त सोच सकती है कि मैं हूं क्योंकि लहर अपने भीतर तो देख न सकेगी, अपने बाहर देखेगी और लहरें दिखाई पड़ेंगी, सागर तो दिखाई न पड़ेगा। यह भी ध्यान रखें। अगर कोई लहर देख सकेगी तो उसे सागर दिखाई कभी नहीं पड़ेगा, लहरें दिखाई पड़ेंगी। क्योंकि छाती पर सागर के लहरें ही होती हैं। सागर तो नहीं होता। और जब एक लहर उठेगी तो आस-पास लहरें उठेंगी क्योंकि कोई लहर अकेली नहीं उठ सकती।
यह भी ध्यान में रख लेना कि कोई लहर अकेली नहीं उठ सकती। मैं अकेला पैदा नहीं हो सकता हूं, और न आप अकेले पैदा हो सकते हैं। करोड़ों-करोड़ों लहर के बीच में हमारा होना है। आपके पिता थे इसलिए आप हैं, उनके भी पिता थे इसलिए वे थे। उनके भी पिता थे, उनके भी पिता थे। लंबी कहानी है। जिसमें अरबों-खरबों लोगों का हाथ है, एक आदमी के होने में। अरबों-खरबों लहरों ने धक्के देकर आप की लहर को उठाया है। तो आप कभी ऐसा मत सोच लेना कि अकेले आप हो सकते हैं। आपके होने का कोई अर्थ ही नहीं है।
जब एक लहर पैदा होती है तो लहर अकेली कभी पैदा नहीं होती, करोड़ों- करोड़ों लहर के जाल में पैदा होती है। उसे चारों तरफ लहरें दिखाई पड़ती हैं, सागर दिखाई नहीं पड़ता। अगर लहर देख सके तो उसे सागर कभी दिखाई नहीं पड़ेगा। उसे लहरें दिखाई पड़ेंगी।
हमको भी परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, प्राणी दिखाई पड़ते हैं। वे लहरें हैं, जो हमारे चारों तरफ हैं--मनुष्यों की, पौधों की, पक्षियों की। चारों तरफ लहरें दिखाई पड़ती हैं, परमात्मा हमें भी दिखाई नहीं पड़ता है।
अब यहां हम इतने लोग बैठे हुए हैं, इतनी लहरें हैं और हम चारों तरफ देखेंगे, तो परमात्मा कहां दिखाई पड़ेगा, लहरें ही लहरें दिखाई पड़ेंगी। कोई लहरें उठती हुई होंगी, बच्चे होंगे, जवान होंगे। कुछ लहरें गिरती होंगी, बूढ़े हो गए, विदा हो गए। कुछ लहरें उठ चुकी होंगी, कुछ जाने के करीब आ गई होंगी, कुछ उठ रही होंगी। हमारे चारों तरफ हम देखेंगे तो परमात्मा कहां दिखाई पड़ेगा, लहरें दिखाई पड़ेंगी। सघन लहरों का जाल है।
तो अगर कोई लहर होश से भर जाए तो पहली तो बात यह है कि उसे सागर दिखाई नहीं पड़ेगा। हमें भी परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है।
दूसरी बात यह है कि उसे दूसरी लहरें दिखाई पड़ेंगी जिनसे वह भिन्न मालूम पड़ेगी कि मैं अलग हूं। स्वाभाविक है। एक लहर उठी है सागर पर, वह देखती है कि पड़ोस की लहर तो गिर रही है, मिट रही है और मैं तो अभी उठ रही हूं तो हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं?
एक आदमी पड़ोस में मेरे मर गया है, मैं उससे एक कैसे हो सकता हूं! अगर एक होता तो मैं भी मर जाता। और अगर एक होता तो उसको भी जिंदा रहना चाहिए था। हम एक नहीं हो सकते, क्योंकि पड़ोस का तो मर गया और मैं जिंदा हूं। हम एक नहीं हो सकते। एक लहर गिर रही है, एक छोटी है और एक बड़ी है, एक बूढ़ी है। लहरों को दिखाई पड़ता है लहरें अलग-अलग हैं। मैं अलग हूं, चारों तरफ की लहरें अलग हैं।
ऐसा ही हमें भी दिखाई पड़ता है कि मैं अलग हूं। चारों तरफ के जीवन में प्राण के स्रोत--मूल-स्रोत से टूटे हुए टुकड़े अलग-अलग हैं। और बाहर देखने को बहुत कुछ है, लहर भीतर क्यों देखे? अगर लहर भीतर देखे तोशायद सागर मिल जाए क्योंकि भीतर उतरने पर कोई लहरें तो नहीं मिलेंगी। अगर एक लहर अपने भीतर उतर सके तो सागर मिलेगा उसे, लहरें नहीं मिलेंगी फिर, क्योंकि नीचे सागर है। इसलिए जब कोई अपने भीतर उतरता है तो परमात्मा का अनुभव कर पाता है। अपने बाहर तो लहरें-लहरें ही दिखाई पड़ती हैं।
ध्यान जो है, वह भीतर उतरने की कला है जिसमें हम बाहर की लहरों की फिकर छोड़ देते हैं और उसी लहर में उतर जाते हैं जो मैं हूं। और जैसे-जैसे हम भीतर उतरते हैं वैसे-वैसे पता चलता है कि लहर नहीं है, सागर है; लहर नहीं है, सागर है। और जितने भीतर जाते हैं, पता चलता है, लहर थी ही नहीं, सागर ही

था, सागर ही है, सागर ही होगा। लहर नहीं है। जो व्यक्ति अपने भीतर जाता है उसे सागर का पता चल जाता है। परमात्मा का पता चल जाता है।

उन मित्र ने पूछा है, लेकिन हम जानें ही क्यों? अगर उसी से आए हैं और उसी में लौट जाना है, तो ठीक है, आ गए और लौट जाएंगे। अब हम इस झंझट में क्यों पड़ें कि हम जानें उसे?

मत पड़ें! कोई कहने नहीं आता कि आप पड़ो। लेकिन पड़े हुए हो। असल में जीवित होने के साथ ही, जीवन क्या है, वह प्रश्न भी हमारे भीतर उठ आता है। जीवित होने का यह हिस्सा है कि हम यह भी जानना चाहते हैं कि जीवन क्या है? कोई नहीं कहता कि आप जानने जाएं, लेकिन ऐसा दुनिया में एक आदमी नहीं मिलेगा जो जानने को आतुर नहीं है। अगर ऐसा आदमी मिल जाए जो जानने को आतुर नहीं है तो बड़ा चमत्कार है। मिल नहीं सकता ऐसा आदमी। छोटे से बच्चे भी जैसे ही बोलना शुरू करते हैं कि जानने की यात्रा शुरू कर देते हैं। वे कहते हैंः यह वृक्ष कहां से आया? प्रश्न उनके उठने शुरू हो जाते हैं। यह पृथ्वी किसने बनाई? यह चांद को रोज रात कौन जला देता है? यह सूरज सुबह निकल आता है, रात कहां चला जाता है? छोटे बच्चे भी पूछते हैं।
जिंदगी पूछती है, जानना चाहती है क्योंकि जान लें हम पूरी तरह तो ही पूरी तरह जी सकते हैं। वह जीने की ही खोज का हिस्सा है कि हम जान लें ताकि हम पूरे जी सकें। अगर मुझे पता चल जाए कि मैं लहर नहीं हूं, सागर हूं, तो मेरे जीने का मतलब ही, अर्थ ही बदल जाएगा। क्योंकि तब मुझे कोई डर न रहेगा मिटने का क्योंकि सागर कभी नहीं मिटता। तब मौत से मुझे कोई डरवा न सकेगा क्योंकि मैं हंसूंगा, कहूंगा कि ठीक है, मिटा दो लहर को, क्योंकि मैं तो लहर हूं ही नहीं। तुम जिसे मिटाओगे, वह मैं नहीं हूं। और तुम मिटा भी न पाओगे और मैं रहूंगा वहीं के वहीं, जहां मैं था। अगर मुझे पता चल जाए कि मैं सागर हूं और लहर नहीं, तो लहर की चिंताएं विदा हो जाएंगी। लहर बड़ी चिंता में पड़ी है। सबसे बड़ी चिंता तो यह है कि वह विदा हो जाएगी, समाप्त हो जाएगी, नष्ट हो जाएगी।
हर आदमी मरने से डरा हुआ है। हम डरे हुए हैं कि मर न जाएं। यह मरने का
डर इसीलिए है कि हमें पता नहीं है कि नीचे कुछ है जो मर ही नहीं सकता। उसका पता चल जाए तो यह भय विदा हो जाए।
सिकंदर हिंदुस्तान से लौटता था तो एक फकीर को पकड़ कर ले जाना चाहता था। उसके मित्रों ने कहा था उससे कि जब हिंदुस्तान से लौटो तो एक संन्यासी को ले आना। तो उसने खबर की गांव में कि कोई संन्यासी हो तो मैं ले जाऊं। लेकिन गांव के लोगों ने कहाः बहुत मुश्किल है। संन्यासी तो है, लेकिन संन्यासी को ले जाना बहुत मुश्किल है। सिकंदर ने कहाः तुम इसकी फिकर मत करो। हमारे पास नंगी तलवारें हैं। हम किसी को भी ले जा सकते हैं। गांव के लोगों ने कहाः फिर आप संन्यासियों को जानते नहीं। क्योंकि नंगी तलवार देख कर संन्यासी हंसेंगे और कुछ भी न होगा। सिकंदर ने कहाः तुम फिकर ही मत करो। तुम मुझे बता दो कि वह कहां है। उसने सिपाही भेजे नंगी तलवारें लेकर और कहा कि उसे पकड़ लाओ। वे सिपाही गए और उन्होंने कहा कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें। संन्यासी बहुत हंसने लगा, उसने कहा, जो खुद ही को महान कहता हो उससे ज्यादा नासमझ और कौन हो सकता है, उससे ज्यादा पागल और कौन हो सकता है। कौन कहता है अपने को महान? वे सिपाही एक क्षण तो डर गए, क्योंकि उनके महान सिकंदर को कोई ऐसा कहेगा! एक नंगा फकीर नदी के किनारे खड़ा हुआ, एक बूढ़ा आदमी। उन सिपाहियों ने कहाः तुम क्या कह रहे हो? गर्दन अलग कर देंगे अगर तुमने इस तरह की बात की। उस फकीर ने कहाः गर्दन मैं बहुत पहले अलग कर चुका हूं। अब अलग करने को कुछ बचा नहीं है। हमने वह काम दूसरों के लिए छोड़ा ही नहीं। तुम अपने सिकंदर को बुला लाओ। हम तुम्हारे मालिक से ही बात करेंगे।
वे सिपाही सिकंदर से कहे कि वह बहुत अजीब आदमी है। अपना वश उस पर न चलेगा, क्योंकि ज्यादा से ज्यादा हम मार सकते हैं, बस इतना हमारा वश है और वह आदमी मरने से जरा भी नहीं डरता। सिकंदर ने कहाः फिर भी मैं चलना

चाहूंगा। सिकंदर गया उस आदमी के सामने और तलवार उसकी गर्दन पर रख दी और कहा कि चलते हो कि गर्दन अलग कर दूं? उस फकीर ने कहाः गर्दन अलग कर दो। और उस फकीर ने कहा कि बड़ा मजा आएगा, तुम भी गर्दन को गिरते देखोगे कि गिर गई और मैं भी देखूंगा कि गिर गई। सिकंदर ने कहाः तुम भी देखोगे! उस फकीर ने कहाः मैं भी देखूंगा। क्योंकि यह गर्दन मैं नहीं हूं। यह जब से जान लिया तब से बात ही खत्म हो गई। अब मुझे कोई सिकंदर डरा नहीं सकता। तलवार भीतर रख ले। उस फकीर ने कहाः तलवार म्यान के भीतर रख, बेकार हाथ थक जाएगा। और सिकंदर का पहला मौका था यह कि किसी के डर में तलवार भीतर रख ली उसने। क्योंकि यह आदमी बेकार था, इसके सामने तलवार निकालना खुद ही मूढ़ता मालूम पड़ने लगी। उसने कहाः तू गर्दन काट ही दे, जरा मजा आ जाएगा। गिर जाएगी तो बहुत अच्छा होगा। लहर अपने को जान ले कि सागर है तो सब बदल जाएगा। सारी जिंदगी बदल जाएगी। जिंदगी के रहने का मजा ही और हो जाएगा क्योंकि तब हम लहर की तरह नहीं, सागर की तरह रहेंगे। तब हम आदमी की तरह नहीं, परमात्मा की तरह रहेंगे। और परमात्मा की तरह रहने का मजा! तब हम पूरे ऐश्वर्य में रहेंगे। ऐश्वर्य का मतलब? ऐश्वर्य का मतलब बड़ा मकान नहीं होगा। ऐश्वर्य का मतलब बड़ा मकान, कितना ही बड़ा मकान हो फिर भी छोटा ही होगा। और धन कितना ही ज्यादा हो फिर भी थोड़ा ही होगा। असल में जो गिना जा सकेगा वह थोड़ा ही होगा। ऐश्वर्य का मतलब है, कि यह सारा जगत जिसका मकान हो गया। सारे चांद-तारे जिसके घर पर रोशनी देने लगे, और हवाएं जिसकी बगिया की सेवा करने लगीं, जो सारे जीवन का मालिक हो गया। मालिक इसीलिए कि उसका मालिक के साथ ऐक्य का अनुभव हो गया। ख्याल है आपको, ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से बना हुआ है। ईश्वर शब्द और ऐश्वर्य शब्द एक ही सत्य के रूपांतरण हैं। ईश्वर का मतलब है मालिक, सब ऐश्वर्य जिसका है; सारा जगत जिसका है।
संन्यासी वह नहीं है जिसने एक घर छोड़ दिया, संन्यासी वह है जिसके सारे
घर अपने हो गए। संन्यासी वह नहीं है जिसने कि एक बेटा-बेटी, एक मां-बाप छोड़ दिया, जिसका सब अपना परिवार हो गया--सब।
यह जो अनुभव है ऐश्वर्य का, यह सबको अपना ही हो जाने का है। यह कैसे होगा? यह होगा लहर भीतर उतरे और जान ले। बच नहीं सकते हैं परमात्मा की खोज से। खोज करनी ही पड़ेगी। गलत भी कर सकते हैं, ठीक भी कर सकते हैं, वह दूसरी बात है। एक आदमी धन खोज कर सोचता है कि ऐश्वर्य को पा लेगा। वह गलत खोज है। क्योंकि धन कितना ही खोज लो, कितना ही खोज लो, फिर भी गिना जा सकेगा। और जो गिना जा सकेगा वह कभी असीम नहीं हो सकेगा। और धन कितना ही इकट्ठा कर लो, वह छीना जा सकेगा, क्योंकि जो छीना गया है वह छीना जा सकता है। आखिर मैं भी छीन कर ही इकट्ठा करूंगा। तो जो मैंने छीना है, वह मुझसे छिन जा सकता है, छिनेगा ही।
धन खोज कर भी आदमी ईश्वर को ही खोज रहा है, मैं यह कह रहा हूं--गलत ढंग
से खोज रहा है। धन खोज कर भी वह ऐश्वर्य की खोज में गया है--लेकिन गलत चला गया है। लहर भीतर की तरफ नहीं गई है, बाहर की लहरों पर कब्जा करने निकल गई है, कि मैं कब्जा कर लूंगी लहरों पर। लहर कहती है, मैं राष्ट्रपति हो जाऊंगी, चालीस करोड़ लहरों पर कब्जा कर लूंगी। लहर पागल हो गई है। सभी राष्ट्रपति पागल हो जाते हैं। वह पागलपन की दौड़ है। और अगर पागलों को खोजना हो तो पागलखानों में नहीं जाना चाहिए, राजधानियों में चला जाना चाहिए। वहां वे सब इकट्ठे मिल जाते हैं। लेकिन वे भी ईश्वर की खोज में लगे हैं, गलती से राजधानी पहुंच गए। वे गलत रास्ते पर जा रहे हैं ईश्वर को खोजने को।
जो पद को खोज रहा है, वह भी ईश्वर को ही खोज रहा है, क्योंकि ईश्वर परम
पद है। उसके आगे फिर कोई पद नहीं है। लेकिन गलत ढंग से खोज रहा है। वह जो धन को खोज रहा है, वह भी ईश्वर को खोज रहा है; लेकिन गलत ढंग से खोज रहा है। वह जो प्रेम में, पत्नी में, बेटे में खोज रहा है, वह भी गलत ढंग से खोज रहा है क्योंकि वह इतने छोटे में खोज रहा है कि मिल नहीं सकता है। इतनी बड़ी आकांक्षा है और इतनी छोटी खोज है। आकांक्षा तो यह है कि सारे जगत की उपलब्धि हो जाए। सारे विश्व की उपलब्धि हो जाए। इतनी बड़ी आकांक्षा है तो बिना परमात्मा को खोजे वह पूरी नहीं होगी।

दोनों रास्ते अलग हैं। अगर लहर दूसरी लहरों पर कब्जा करने निकल जाए
तो यह एक रास्ता है जो गलत रास्ता है, और अगर लहर अपने भीतर उतर जाए और पता पा ले कि कौन है नीचे, तो सारी लहरों पर कब्जा मिल ही गया क्योंकि सारी लहरें अलग न रहीं। अब कब्जा करने की कोई जरूरत न रही। वह हम ही हैं। जैसे ही लहर नीचे उतरती है, सागर मिल जाता है और उसे पता चल जाता है कि सब लहरें सागर की ही हैं। अब झंझट न रही, जब सागर ही हम हैं तो अब और दूसरी लहर पर कब्जा करने की क्या बात है। अब सबके भीतर हम ही हो गए।
इसलिए यह तो पूछें मत कि हम झंझट में क्यों पड़ें? कोई नहीं कहता कि पड़ें। लेकिन आप पड़े ही हुए हैं। उपाय नहीं झंझट के बाहर होने का। झंझट से गुजरेंगे तो बाहर हो भी सकते हैं। जब आप यह पूछते हैं, हम झंझट में क्यों पड़ें, तो ऐसा लगता है जैसे पड़ने का निर्णय आप कर रहे हैं अब। नहीं, आप पड़े ही हुए हैं। जीवन में होना ही झंझट में होना है। यह कोई मेरी बात सुन कर आप ईश्वर की खोज पर नहीं चले गए हैं। ईश्वर की खोज पर चले गए होंगे इसलिए मेरी बात सुनने चले आए हैं। यह कोई मेरी बातें सुन कर आपके मन में प्रश्न पैदा नहीं हो जाएंगे, प्रश्न होंगे आपके मन में इसलिए मेरी बातें सुनने आए हैं। खोज है जारी, चल रही है। खोज पूरी हो सकती है अगर हम भीतर की तरफ जाएं तो हम पा लेंगे। और अगर हम बाहर की तरफ खोजते रहें तो और खो देंगे, पाना तो बहुत दूर है। और खो देंगे। कुछ लोग हैं जो भिखारी ही पैदा होते हैं और भिखारी ही मर जाते हैं। धन हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यश हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पद हो, प्रतिष्ठा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि ये सारी की सारी बाहर की खोजें हैं जिनकी सीमाएं हैं और असीम की आकांक्षा है मन में। और सीमित से तृप्ति कभी भी नहीं हो सकती। कोई किसी प्रेमी से तृप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रेम की आखिरी खोज परम प्रेमी के लिए है। जब तक परमात्मा ही प्रेमी की तरह न मिल जाए तब तक तृप्ति का कोई उपाय नहीं है। खोज तो चल ही रही है।

उन्होंने यह भी पूछा है कि यह खोज है ही क्यों? इसकी जरूरत ही क्या है?

यह तो कभी परमात्मा मिल जाए तो उससे पूछ लेना क्योंकि इसके लिए सिवाय उसके और कोई उत्तर नहीं दे सकता। यह है ही क्यों? यह तो परमात्मा मिले तो उससे पूछ लेना। हालांकि अब तक जितने लोग मिले हैं, पूछ नहीं पाए। क्योंकि मिलते ही पूछना भूल जाते हैं। अब जिन मित्र ने पूछा है, खूब पक्का लिख कर रखना कि भूल न जाएं। लेकिन है खतरा वही, अब तक कोई नहीं पूछ पाया। क्योंकि जैसे ही वह मिल जाता है, सब मिल जाता है, पूछने का मन ही चला जाता है। मैंने सुना है, एक समुद्र के किनारे एक मेला भरा हुआ था। बहुत लोग गए थे। दो नमक के पुतले भी गए थे वहां। लोगों में विवाद होने लगा, सागर की गहराई कितनी है? तो नमक के पुतले गुस्से में आ गए, तेजी में आ गए। तो उन्होंने कहाः हम अभी कूद कर पता लगा आते हैं। एक पुतला कूद गया। फिर लोग किनारे पर खड़े देखते रहे। वह नहीं लौटा, नहीं लौटा, नहीं लौटा। बहुत परेशानी हुई। दूसरे पुतले ने कहाः मैं अभी उसका पता लगा कर आता हूं। वह भी कूद गया। वह भी नहीं लौटा, नहीं लौटा, नहीं लौटा। फिर मेला बिछुड़ गया। अब हर साल उसी दिन मेला लगता है, उस समुद्र के तट पर, इसी प्रतीक्षा में कि शायद वे नमक के पुतले अब तक लौट आएं। वे लौटते ही नहीं क्योंकि सागर में नमक का पुतला जाएगा तो घुलेगा, बह जाएगा, मिट जाएगा, खो जाएगा। लौट कर खबर नहीं दे पाएगा। और भीतर जितना जाएगा उतना मिटता चला जाएगा। ठीक गहराई तक पहुंचते-पहुंचते बचेगा कौन जो पूछ ले कि गहरे कितने हो? कितनी है गहराई? यह पूछने को बचेगा कौन? ये सब लहर के सुख हैं जो पूछ रही है। प्रश्न सब लहर के हैं, उत्तर सब सागर में हैं। लेकिन प्रश्न लहरें पूछती हैं, सागर के पास सब उत्तर हैं। और जब लहर सागर में उतरती जाती है तो प्रश्न खो जाते हैं, पूछने को कुछ नहीं रह जाता।
यह जो आप पूछते हैं, यह है ही क्यों? यह जगत क्यों है? यह प्रकृति क्यों है? यह होना क्यों है? यह जीवन क्यों है? हम बने क्यों हैं? यह आप पूछते रहें, पूछते रहें, पूछते रहें, कोई उत्तर नहीं है। और कोई उत्तर देता

हो तो बेईमान है। उत्तर है नहीं। अब तक दिया नहीं गया, दिया जा सकता नहीं। हां, एक कोई दे सकता है उत्तर जो नीचे है सबके भीतर फैला, जो सब देखा है--आना और जाना और होना। अनंत लीला देखी है। वह दे सकता है उत्तर। तो वहां पहुंच जाएं और उससे पूछ लें। लेकिन अभी तक कोई पूछ नहीं पाया। जो जाता है, मिट जाता है। यानी ऐसा कुछ है कि जब हम उसके सामने खड़े होते हैं तो हम मिट जाते हैं। और जब तक हम होते हैं तब तक वह सामने नहीं होता। मुलाकात सीधी-सीधी नहीं हो पाती कि सामने खड़े हो जाएं और पूछ लें कि क्यों है यह सब?
सच यह है कि यह प्रश्न जो है, एब्सर्ड, यह प्रश्न जो है गलत ही है। गलत क्यों? गलत इसलिए है कि हम जीवन के अंतिम "क्यों" का उत्तर नहीं पा सकते हैं। वह जो अल्टीमेट वॉय, जो आखिरी "क्यों" है, उसका उत्तर हम नहीं पा सकते हैं। क्यों नहीं पा सकते हैं?
इसलिए नहीं पा सकते हैं कि कोई भी उत्तर मिले, हम फिर उसमें "क्यों" पूछ सकते हैं। कोई भी उत्तर मिले, "क्यों" पूछने में क्या तकलीफ होगी? कोई कहता है, ईश्वर ने जगत को बनाया और हम पूछते हैं कि ईश्वर को किसने बनाया? अब कोई कहता है कि "अ" नाम के आदमी ने ईश्वर को बनाया? हम पूछते हैं, अ नाम के आदमी को किसने बनाया? अब यह पूछना चलता रहे, चलता रहे, चलता रहे, तो इसका अंत कैसे आ सकता है। इसका अंत नहीं आ सकता क्योंकि जो प्रश्न है वह ऐसा है जो हर उत्तर पर लागू हो जाएगा। कैसा भी उत्तर दिया जाए क्यों फिर भी पूछा जा सकता है, कि क्यों? इसलिए जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे क्यों के संबंध में चुप ही रह गए हैं। क्योंकि उनका कहना है कि क्यों की बात ही व्यर्थ है। इसमें पूछा ही नहीं जा सकता। इनफिनिट रिग्रेस, यह अंतहीन हो जाएगी, इसका कोई अर्थ नहीं है।
बच्चों की कहानी पढ़ी होगी। छोटे बच्चे क्यों-क्यों पूछते ही चले जाते हैं। वे पूछते हैं, और आगे--अगर कोई छोटे बच्चों को कहानी सुनाए और कहे कि राजा रानी का विवाह हो गया और फिर वे दोनों आनंद से रहने लगे। हालांकि यह बिल्कुल झूठी बात है, विवाह के बाद कोई आनंद से रहता नहीं। लेकिन, सब कहानियां यही कहती हैं और इसके आगे कुछ भी नहीं बताती हैं क्योंकि इसके आगे बताना खतरनाक है, वह तो आदमियों को खुद ही पता चल जाता है कि आगे क्या होता है। इसलिए सब कहानियां यहां खत्म हो जाती हैं कि उनका विवाह हुआ और वे दोनों आनंद से रहने लगे। आगे बात ही नहीं। फिल्म भी यहीं खत्म होती है, कहानी, उपन्यास, सब यहीं खत्म हो जाते हैं। क्योंकि इसके आगे बहुत खतरनाक दुनिया शुरू होती है जिसको कि बताना ठीक नहीं है। लेकिन बच्चे फिर भी पूछते हैं कि फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ? बच्चे हैं कि पूछते ही चले जाते हैं।
मैं एक कहानी पढ़ रहा था बच्चों की। वह कहानी बहुत बढ़िया है। वह आपने
भी सुनी होगी। बच्चों ने तो बहुतों ने जानी है। एक बूढ़ी स्त्री है, वह अपने नाती-पोतों को कहानियां सुनाती है। वे नाती-पोते उसका सिर खाए जाते हैं। वे पूछते हैं, फिर, फिर क्या हुआ? वह बूढ़ी थक जाती है। थक जाती है, लेकिन वे पूछते हैं, फिर क्या हुआ? फिर उस बूढ़ी ने एक कहानी ईजाद की। उसने कहाः एक वृक्ष है एक सागर के किनारे। उस पर अनंत पक्षी बैठे हुए हैं। एक पक्षी उड़ा, फुर्र... । तो उनके बेटों ने पूछा, फिर क्या हुआ? उसने कहाः दूसरा पक्षी उड़ा, फुर्र... । पूछे, फिर क्या हुआ? वह बुढ़िया उत्तर देती चली जाती है। फिर सब बेटे धीरे-धीरे थक जाते हैं। उन्होंने कहा, बस यही होता रहा? फिर क्या हुआ? वह बुढ़िया कहती है, एक पक्षी उड़ा फुर्र, और वह बुढ़िया कहती है, अनंत पक्षी बैठे हैं उस वृक्ष पर इसलिए अब थकेगी नहीं, यह कहानी, अब खत्म नहीं होगी यह कहानी, यह चलती रहेगी। फिर सब बेटे थक जाते हैं और सो जाते हैं। हम जो क्यों पूछते हैं, वह अंतहीन हो जाएगा, उसका कोई अर्थ नहीं है। हम पूछते हैं, आदमी क्यों हुआ? हम बेमानी प्रश्न पूछ रहे हैं। हम कोई भी उत्तर देंगे, हम फिर पूछेंगे, वह क्यों हुआ? हमें लगेगा, हम बहुत बुद्धिमानी का प्रश्न पूछ रहे हैं। बहुत से तथाकथित बुद्धिमान ऐसे प्रश्न पूछते भी रहे हैं। शास्त्र भरे हैं इस तरह के प्रश्नों से। लेकिन सब बच्चों के प्रश्न हैं, बुद्धिमानों के प्रश्न नहीं हैं। क्योंकि बुद्धिमान एक बात समझ लेगा कि "क्यों" का उत्तर संभव नहीं है। क्योंकि

"क्यों" हर उत्तर पर लागू हो सकता है। इसलिए पहले ही क्यों का उत्तर क्यों देना? क्योंकि उससे कोई मतलब ही नहीं है--आगे, आगे, आगे होता चला जाएगा। मैं नहीं देता उत्तर। मैं यह कहता हूं, जीवन है। आना हुआ है, जाना होगा। क्यों है, मुझे पता नहीं है। किसी को भी पता नहीं है। लेकिन अज्ञान को स्वीकार करने में भी बड़ी कठिनाई है। सभी पंडितों को यह ख्याल है कि उनको सभी पता होना चाहिए। सभी ज्ञानियों को यह भ्रम है कि उन्हें सर्वज्ञ होना चाहिए। वे परमात्मा को जानने के लिए कुछ बचने ही नहीं देना चाहते हैं। वे पूरा खुद ही जान लेना चाहते हैं। लेकिन वे कितना ही जान लें, आखिरी क्यों का उत्तर आज तक किसी शास्त्र में नहीं है और न किसी बुद्ध ने दिया, न किसी महावीर ने, न किसी कृष्ण ने, न किसी क्राइस्ट ने। आज तक आखिरी क्यों का उत्तर दिया ही नहीं गया है। इसलिए नहीं कि वे लोग नहीं जानते थे, बल्कि इसलिए कि वह दिया ही नहीं जा सकता है। वह अल्टीमेट क्वेश्चन, आखिरी, अंतिम प्रश्न का अर्थ ही यह होता है कि उसका उत्तर नहीं है। और अगर आप उसे खोजने जाएंगे तो प्रश्न मिटेगा और साथ ही आप भी मिट जाएंगे। अगर आप चरम प्रश्न की खोज में गए तो आप भी खो जाएंगे, जैसे नमक का पुतला सागर में खो गया। कबीर ने कहा है कि बहुत खोजता था; बहुत खोजता था; खोजते-खोजते फिर खुद
ही खो गया। बहुत खोजा, बहुत खोजा, फिर खोजते-खोजते खुद ही खो गया। और जब खुद खो गया तब वह मिल गया जिसकी खोज थी। और जब तक खोजता था वह न मिला क्योंकि तब तक मैं था। इन दोनों का मिलना नहीं होता। वह गली बहुत संकरी है, कबीर कहते हैं, बहुत संकरी है, क्योंकि उसमें दो नहीं समाते। उसमें जब तक हम समाए रहते हैं, तब तक वह लापता रहता है, और जब वह आ जाता है तब अचानक हम पाते हैं कि हम गए। क्योंकि लहर जब तक लहर की तरह अपने को जानती है, तब तक अपने को सागर की तरह नहीं जान सकती है। यह दोनों जानना एक साथ कैसे हो सकते हैं कि एक लहर अपने को लहर की तरह भी जाने और साथ ही अपने को सागर की तरह भी जान ले। जिस क्षण वह जानेगी कि मैं सागर हूं उस क्षण जानेगी कि अब मैं लहर न रही। और जब तक वह जानती है, मैं लहर हूं तब वह जानती है, मैं लहर हूं और सागर नहीं हूं। इसलिए लहर की और सागर की कभी मुलाकात नहीं होती। लहर और सागर का मिलन होता है। मुलाकात नहीं होती। लहर खो जाती है, सागर हो जाती है। लेकिन मुलाकात नहीं होती क्योंकि मुलाकात होने के लिए लहर को अब भी होना जरूरी है।
इसलिए आदमी और ईश्वर की अभी तक कोई वार्ता, कोई डायलॉग, कोई बातचीत नहीं हुई, आमने-सामने बैठ कर कोई बात नहीं हुई। लेकिन अगर कभी हो जाए तो सब हो सकता है। जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि पता नहीं, क्या हो जाए। कभी हो जाए तो कागज में ठीक से लिख कर रखना, ताकि वह वक्त पर भूल न जाओ। वह भूल सकता है। यह ध्यान में रहे कि हमारे अधिकतम प्रश्न, जो जीवन के संबंध में उठते हैं, वे हमारे दुख, हमारी बेचैनी, हमारी चिंता, हमारी परेशानी के प्रश्न हैं।
जैसे एक आदमी को सन्निपात हो गया, उसे बुखार चढ़ा और डिग्रियां बढ़ती चली गईं और थर्मामीटर अपनी आखिरी सीमा बताने लगा और घर के लोगों से वह आदमी पूछता है कि मेरी खाट उड़ रही है--पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है, मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मुझे बताओ, मेरी खाट पूरब उड़ती है कि पश्चिम? तो घर के लोग कहते हैं, शांत पड़े रहो, थोड़ी देर में ठीक हो जाओगे। लेकिन वह आदमी कहता है, ठीक और गलत का सवाल नहीं है। अभी तो सवाल यह है कि मेरी खाट उड़ रही है, वह पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है? अब घर के लोग क्या करें? उसे उत्तर दें? और क्या कोई ठीक उत्तर दिया जा सकता है? अगर घर के लोग कहें, पूरब उड़ रही है तो भी गलत है क्योंकि खाट उड़ ही नहीं रही है। अगर घर के लोग कहें पश्चिम उड़ रही है तो भी गलत है। अगर घर के लोग कहें, उड़ ही नहीं रही है तो सन्निपात वाला हंसता है। वह कहता है, पागल हो? न उड़ रही होती तो मैं पूछता क्यों? उड़ रही है, यह तो पक्का रहा, इसकी तो बात ही मत उठाओ। सवाल यह नहीं है कि उड़ रही है कि नहीं उड़ रही है। सवाल यह है कि पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है। तो घर के लोग उसके सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रखते हैं, डाक्टर को भागते हैं लेने, क्योंकि घर के लोग उसके प्रश्न का उत्तर देने नहीं बैठ जाते, क्योंकि वे कहते हैं, उत्तर देने में खतरा हो

सकता है। वह आदमी मरने के करीब है। वे भागते हैं, वे उससे कहते हैं, जरा ठहरो, बुखार उतर जाने दो फिर बता देंगे। वह इस आशा में यह कहते हैं कि बुखार उतर जाने पर वह पूछेगा ही नहीं। बता तो फिर भी न सकेंगे क्योंकि खाट उड़ ही न रही थी। सिर्फ एक आशा है कि बुखार उतर जाएगा तो वह पूछेगा नहीं। और क्या आप को ख्याल है कि बुखार उतर जाने पर वह पूछेगा? बुखार उतर जाने पर घर के लोग ही पूछेंगे कि क्या ख्याल है? खाट पश्चिम उड़ रही है कि पूरब? तो वह हंसेगा। वह कहेगा, पागल हो गए हो? खाट उड़ ही नहीं रही।
हमारे जो प्रश्न हैं--जिनको हम मेटाफिजिकल कहते हैं, बड़े दार्शनिक कहते हैं, बड़े गहरे प्रश्न कहते हैं, बहुत गहरे-वहरे नहीं हैं। हमारे चित्त की बेचैनी और अशांति से उठे हुए प्रश्न हैं। क्या आपको पता है कि कभी आपने सुख की हालत में पूछा हो कि सुख क्यों है? कभी नहीं। एक आदमी ने नहीं पूछा आज तक। जब कोई आदमी पूरे सुख की हालत में होता है तो वह यह नहीं पूछता कि सुख क्यों है? लेकिन जब दुख की हालत में होता है तो पूछता है कि दुख क्यों है? जब कोई आदमी स्वस्थ होता है तो कभी पूछता है कि स्वास्थ्य क्यों है? नहीं, लेकिन जब बीमार होता है तो पूछता है कि बीमारी क्यों है? जब कोई आदमी किसी को प्रेम करता है और प्रेम में जीता है और प्रेम में होता है तो वह यह नहीं पूछता है कि प्रेम क्यों है? लेकिन जब प्रेम टूट जाता है और चित्त दर्पण की तरह खंड-खंड होकर बिखर जाता है तब वह पूछता है कि प्रेम टूट क्यों जाता है? जब किसी मां का बेटा जिंदा होता है तो वह कभी नहीं पूछती कि बेटा जिंदा क्यों है, लेकिन जब वह मर जाता है तो वह छाती पीटती है और कहती है कि मेरा बेटा मर क्यों गया?
कभी आपने सोचा कि यह "क्यों" हमेशा दुख में ही उठता है? यह क्यों, कभी सुख में नहीं उठता। असल में जीवन हमारा इतने दुख में है कि हम पूरे जीवन के संबंध में पूछते हैं कि जीवन क्यों है? यह प्रश्न जो है, मेटाफिजिकल नहीं है, दार्शनिक नहीं है, साइकोलॉजिकल है, मानसिक है। और इसका उत्तर दर्शनशास्त्र में नहीं है, इसका उत्तर मनसशास्त्र में है। मनसशास्त्र यह कहता है कि जब कोई आदमी पूछे किसी चीज के संबंध में कि यह क्यों है तो उसका उत्तर मत देना, समझना कि उसकी स्थिति गड़बड़ी में पड़ गई है। उसका इलाज करना। एक मां पूछती कि मेरा बेटा क्यों मर गया है? तो हम क्या उत्तर देते हैं। उसने बेटे के होने को तो चुपचाप स्वीकार किया था, न होने को वह स्वीकार नहीं कर पाती। वह दुख से भर गई है, वह पीड़ा से भर गई है।
हम जब प्रश्न पूछते हैं पूरे जीवन के संबंध में तो उसका मतलब है कि पूरा जीवन हमारा दुख, चिंता, उदासी और गहरी पीड़ा से भर गया है। इसलिए प्रश्न उठ रहा है। अगर आनंद से भर जाएगा, प्रश्न खो जाएगा। जिस दिन, पूरे आनंद को कोई जीता है उस दिन प्रश्न पूछता ही नहीं। असल में सब दर्शन, सब फिलासफी दुख से पैदा होते हैं। सब दुखी चित्त के जन्म हैं। आनंदित क्यों पूछें, क्यों? सवाल ही नहीं उठता, ख्याल ही नहीं आता। आनंद तो स्वीकृत हो जाता है। तब क्यों का सवाल नहीं उठता है।
मैं आपसे यह नहीं कहता हूं कि आप न पूछें, जब तक चित्त दुखी है, पूछेंगे ही। पूछते ही रहेंगे। लेकिन ध्यान रहे, दुखी चित्त रहेगा, पूछते रहें, उत्तर नहीं मिलेगा। न दुखी चित्त मिटेगा। इस "क्यों" को एक सिंबल, एक प्रतीक समझना दुखी चित्त का और प्रश्नों की खोज में न जाकर दुखी चित्त को मिटाने की खोज में चले जाना। जिस दिन चित्त आनंद से भर जाएगा उसी दिन प्रश्न विदा हो जाएंगे। ऐसे गिर जाते हैं कि पता ही नहीं चलता कि कभी थे भी। जो लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, हम समझते हैं कि उनको सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गए होंगे तो हम बहुत गलत समझते हैं। जो लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं वे, वे लोग नहीं हैं जिन्हें सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गए। वे, वे लोग हैं, जिनके सभी प्रश्न गिर गए। जिनके पास कोई प्रश्न ही न रहा।
प्रश्न पूछता है अज्ञान से भरा चित्त। ज्ञान से भरा चित्त प्रश्न नहीं पूछता। ऐसा नहीं है कि उत्तर मिल जाते हैं। मैंने कहा न, सन्निपात से उतर आया आदमी वापस, तो अब यह थोड़े ही है कि उसको उत्तर मिल जाता है कि खाट पूरब उड़ती थी कि पश्चिम, उत्तर नहीं मिलता है, सिर्फ प्रश्न गिर जाते हैं।

यह ख्याल रखना, ज्ञान में प्रश्न गिरते हैं उत्तर नहीं मिलते। सिर्फ प्रश्न गिर जाते हैं। और जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं वह प्रश्नों को गिरा देने की प्रक्रिया है। वहां सब प्रश्न गिर जाते हैं और चित्त उस आनंद में पहुंच जाता है जो निष्प्रश्न है, जो अनक्वेश्चंड है, जो बिना प्रश्न पूछे भीतर खड़ा होगा और जिसमें हम इस भांति लीन हो जाते हैं कि प्रश्न पूछ कर भी उसका खंडन करने की हिम्मत हम न करेंगे क्योंकि प्रश्न पूछने से बाधा हो जाएगी। इतने रस में विभोर जब चित्त हो जाता है तो प्रश्न नहीं पूछता क्योंकि डरता है कि प्रश्न पूछा तो कहीं रस खंडित न हो जाए। कहीं प्रश्न पूछा तो संगीत का बहाव टूट न जाए, कहीं प्रश्न पूछा... । यह भी सवाल नहीं उठता कि मैं पूछूं कि न पूछूं। सब खो जाता है। सब चुप हो जाता है, सब मौन हो जाता है।
उस मौन में हम जानते हैं, उत्तर नहीं, यही कि हमारे सब प्रश्न गलत थे। अज्ञान से उठे थे। यही कि हमने पूछा, वही भूल थी। और तब हमें गुरुओं पर बहुत हंसी आती है। क्योंकि तब पता लगता है कि जो हमने पूछा था, वह तो पागलपन था ही, लेकिन जिन्होंने उत्तर दिए थे वे भी गजब के पागल थे।
अब एक आदमी सन्निपात से नीचे उतर आया, अब उसे पता चला कि खाट उड़ती ही न थी, सिर्फ सन्निपात में प्रतीत होती थी कि उड़ रही है।
अब अगर घर में किसी ने उसको उत्तर दिया होगा कि पूरब उड़ती है तेरी खाट,
तो वह आदमी कहेगा, यह आदमी पागल मालूम होता है। मैं तो सन्निपात में था, यह ठीक। लेकिन इस आदमी ने कहा कि पूरब उड़ती है।
इसलिए मैं कहता हूं, जिस दिन जीवन में वह क्रांति उतरती है जिसे परमात्मा का मिलन कहें, उस दिन सभी गुरु एकदम पागल मालूम होते हैं। उस दिन बड़ी हैरानी होती है कि कैसे-कैसे जवाब देने वाले थे।
कोई कहता था सात स्वर्ग हैं, कोई कहता था सात नरक हैं। कोई कहता था तीन हैं, कोई कहता था छह हैं। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ कहता था। हजार उत्तर थे, लाख उत्तर थे। हजार संप्रदाय थे, लाख गुरु थे। न मालूम कितने-कितने पंथ थे, न मालूम क्या-क्या जवाब थे। और मजा यह है कि वह जो प्रश्न पूछा था वह अज्ञान में पूछा गया था। उसका कोई उत्तर ही न था। वह प्रश्न ही गलत था। असल में अज्ञान में ठीक प्रश्न पूछे ही नहीं जा सकते।
अज्ञान में ठीक प्रश्न कैसे पूछे जा सकते हैं? अंधा आदमी प्रकाश को नहीं जानता तो प्रकाश के संबंध में ठीक सवाल कैसे पूछ सकता है। और आंख वाला प्रकाश को जानता है इसलिए सवाल ही नहीं पूछता। सवाल पूछने की कोई जरूरत नहीं है।
अब यह दिक्कत है जीवन की कि आंख वाला सवाल नहीं पूछता प्रकाश के संबंध में। जो कि पूछे तो कुछ मतलब हो। और अंधा पूछता है जिसके पूछने का कोई मतलब नहीं है। यहां हालतें ऐसी हैं कि लंगड़े चलने की कोशिश करते हैं और जिनके पैर हैं वे आराम से बैठे हुए हैं। अंधे रास्ता खोज रहे हैं और जिनके पास आंखें हैं वे विश्राम कर रहे हैं, वे रास्ता ही नहीं खोजते।
ज्ञानी वह नहीं है जिसको सब प्रश्नों के उत्तर मिल गए। ज्ञानी वह है
जो उस जगह पहुंचा शांति की जहां उसने पाया सब प्रश्न फिजूल हैं। और चुप हो गया, और नहीं पूछा, और पा गया सब।
जानना, प्रश्नों का उत्तर नहीं है, जानना, प्रश्नों का अभाव है, एब्सेंस है, अनुपस्थिति है। ध्यान यही प्रयोग है जहां सब अनुपस्थित हो जाता है और लहर धीरे से उतर कर सागर के साथ एक हो जाती है। और बहुत से प्रश्न रहे, वह कल मैं बात करूंगा।
सुबह हम यहां ध्यान के लिए बैठ जाएंगे। तो जिनको उस जगह पहुंचना हो जहां कि उससे प्रश्न पूछा जा सके--परमात्मा से, सागर से, वे सुबह आ जाएं। लेकिन सुबह सिर्फ वे ही लोग आएं जो लहर छोड़ कर सागर में उतरने के लिए उत्सुक हों। जो इतने अशांत हो गए हैं कि अब शांति की तरफ जाने का जिन्हें ख्याल आए।

मेरी बातों को इतनी शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन ही है प्रभु
चौथा प्रवचन

जिंदगी बहाव है- विराट से विराटतरकी तरफ

ध्यान विलीन होने की क्रिया है--अपने को खोने की, उसमें जो हमारा मूल-स्रोत है। जैसे कोई बीज टूट जाता है और वृक्ष हो जाता है, ऐसे ही कोई मनुष्य जब टूटने की हिम्मत जुटा लेता है, तो परमात्मा हो जाता है। मनुष्य बीज है, परमात्मा वृक्ष है। हम टूटें तो ही वह हो सकता है। जैसे कोई नदी सागर में खो जाती है, तो सागर हो जाती है। लेकिन नदी सागर में खोने से इनकार कर दे, तो फिर नदी ही रह जाएगी। और सागर में खोने से इनकार कर दे, तो फिर नदी भी नहीं रह जाती, तालाब हो जाती है; बंधा हुआ डबरा हो जाती है। क्योंकि जो सागर में खोने से इनकार करेगा, उसे बहने से भी इनकार करना होगा। क्योंकि सब बहा हुआ अंततः सागर में पहुंच जाता है, सिर्फ रुका हुआ नहीं पहुंचता। तो कोई नदी अगर सागर में पहुंचने से इनकार करेगी, तो नदी भी नहीं रह जाएगी; सागर तो होगी ही नहीं, नदी भी नहीं रह जाएगी, बंधा हुआ डबरा हो जाएगी। डबरे सिर्फ सूखते और सड़ते हैं। सागर का महाजीवन उन्हें नहीं मिल पाता।
हम सब भी डबरों की तरह हो जाते हैं; क्योंकि हम सबकी भी जीवन-सरिताएं परमात्मा के सागर की तरफ नहीं बहती हैं। और बह केवल वही सकता है जो अपने से विराट में लीन होने को तैयार हो। जो डरेगा लीन होने से वह रुक जाएगा, ठहर जाएगा, जम जाएगा, बहना बंद हो जाएगा।
जिंदगी बहाव है रोज और महान से महान की तरफ। जिंदगी यात्रा है और-और विराट की मंजिल की तरफ।
लेकिन हम सब रास्तों पर रुक गए हैं मील के पत्थरों की तरह। ध्यान इस बहाव को वापस पैदा कर लेने की आकांक्षा है। इसलिए मैंने कल कहा, ध्यान है समर्पण, सरेंडर। और समर्पण भी पूरा। सच तो यह है कि अधूरा समर्पण हो ही नहीं सकता। समर्पण पूरा ही होगा, टोटल ही होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि आधा तो हम परमात्मा के हाथों में छोड़ दें और आधा अपने हाथों में रखें। छोड़ेंगे तो पूरा छोड़ेंगे, नहीं छोड़ेंगे तो बिल्कुल नहीं छोड़ पाएंगे।
अंग्रेजी में एक शब्द हैः "लेट-गो।" सब छोड़ देना है। अगर एक क्षण को भी
हम सब छोड़ पाएं, तो सब हमें मिल जाए, इसकी पात्रता उपलब्ध हो जाती है। यह बड़ा उलटा है। वर्षा होती है पहाड़ों पर, तो बड़े-बड़े शिखर खाली रह जाते हैं; क्योंकि वे पहले से ही भरे हुए हैं और खड्ढ और खाइयां भर जाती हैं, झीलें भर जाती हैं; क्योंकि वे खाली हैं। जो भरा है वह खाली रह जाएगा, जो खाली है भर जाएगा। परमात्मा की वर्षा तो प्रतिपल हो रही है। सब तरफ वही बरस रहा है। लेकिन हम अपने भीतर भरे हुए हैं, तो हम खाली रह जाते हैं। काश, हम भीतर गड्ढों की तरह खाली हो जाएं, तो परमात्मा हममें भर सकता है। हम सब उसके भराव को उपलब्ध हो सकते हैं, फुलफिलमेंट को उपलब्ध हो सकते हैं। यह बहुत उलटा है, लेकिन यही सही है। जो भरे हैं, वे खाली रह जाएंगे और जो खाली हैं, वे भर जाते हैं। इसलिए ध्यान का दूसरा अर्थ हैः खाली हो जाना, एंप्टीनेस। बिल्कुल खाली हो जाना है, कुछ भी न रह जाए। मिटने का, समर्पण का, खाली होने का सबका एक ही अर्थ है।
इस ध्यान की मिटने की स्थिति को समझने के लिए पहले हम तीन छोटे प्रयोग करेंगे, जैसे कल हमने किए। पांच-पांच मिनट उन तीन प्रयोगों को करेंगे। और फिर दस मिनट ध्यान का प्रयोग करेंगे।
वे तीन प्रयोग ध्यान की सीढ़ियां हैं। और अगर वे तीन हमें ठीक से समझ में आ जाएं, तो ध्यान बहुत आसान है। लेकिन अगर वे तीन हमारी समझ में न आएं, तो फिर ध्यान बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए पहले इन तीन प्रयोगों को ठीक से करें। सबसे पहला काम तो यह करें कि थोड़े फासले पर हट जाएं, आवाज दूर तक सुनाई पड़ेगी। घने मत बैठें। कोई गिर जाए, या किसी को डर लगा रहे कि किसी के ऊपर न गिर जाऊं, ऐसी जगह हट जाएं। अपने आगे-पीछे इतनी जगह बना लें कि आप अगर लेट भी जाएं तो किसी को कोई बाधा नहीं होगी। और शीघ्र हट जाएं, उसमें प्रतीक्षा मत करें, क्योंकि छोटी सी बात से बहुत कुछ खोया जा सकता है। न, न,

वहां ऐसे हिलने से कुछ भी नहीं होगा। वहां ऐसे हिलने से क्या फर्क पड़ेगा? कोई आपके हिलने से जगह थोड़े ही बन जाएगी? वहां से हट जाएं। इतनी चारों तरफ जगह पड़ी हुई है, मौका है, उसका उपयोग करें पूरा। ऐसे बैठें कि आप बिल्कुल बेफिकर होकर बैठ सकें कि गिर गए तो गिर गए, कोई बात नहीं।
आंख बंद कर लें। पहला प्रयोग करें। आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। पहला प्रयोग हैः बहने का अनुभव। आंख बंद कर ली हैं, शरीर ढीला छोड़ दिया है। अब भीतर एक चित्र को देखना शुरू करें--दो पहाड़ों के बीच में, सूरज की धूप में चमकते हुए पहाड़, उन दो पहाड़ों के बीच में बहती हुई एक नदी। तेज धार, बड़ी गति, गहरा नीला पानी, नदी बही जा रही है, भागी जा रही है सागर की खोज में। दूर कहीं अज्ञात में सागर है, नदी भागी जाती है खोज में। इस नदी को ठीक से देख लें, इसके भागने को पहचान लें। क्योंकि थोड़ी ही देर में हम इसमें उतरेंगे और हमको भी बह जाना है। देखें, नदी भाग रही तेजी से सागर की तरफ। साफ दिखाई पड़ने लगेगा, दोनों ओर पहाड़ के शिखर धूप में चमकते हुए, बीच में नीली सरिता भागती हुई, तेज गति है, दूर की यात्रा पूरी करनी है, नदी भागी जा रही है। इस नदी में उतरना है। और उतर कर तैरना नहीं, बह जाना है। जैसे हमारे पास हाथ-पांव ही न हों, ऐसे नदी में पड़ जाना है, ताकि नदी हमें ले जाए अपने साथ। हमें कुछ भी नहीं करना है, सिर्फ बहना है। और बहने के, फ्लोटिंग के इस अनुभव को ठीक से समझ लेना, यह ध्यान का पहला चरण होगा। बहने का अनुभव, तैरने का नहीं, यह ध्यान रहे। यह फर्क ठीक से समझ लेना। नदी में उतर कर तैरना नहीं है। क्योंकि तैरेंगे तो हमें कुछ करना पड़ेगा, वह समर्पण न होगा। और बहेंगे तो नदी कुछ करेगी, वह समर्पण होगा। ध्यान में परमात्मा की नदी में हम अपने को छोड़ देंगे और बह जाएंगे। हम कुछ भी न करेंगे, उसके हाथों में छोड़ देंगे, जो उसे करना हो करे, न करना हो, न करे।
देखें, नदी बह रही है, भाग रही है। अब आप भी उतर जाएं और उसी नदी में बह जाएं। जैसे कोई सूखा पत्ता बहती नदी में गिर गया हो, ऐसे ही नदी में गिर जाएं और बह जाएं। तैरें नहीं। नदी भागी जा रही है आप भी उसमें बहे जा रहे हैं। अब पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं, आप अनुभव करें बहने का। नदी में गिर गए हैं और बह रहे हैं। तैर नहीं रहे हैं, हाथ-पैर नहीं हिला रहे हैं, कोई प्रयत्न नहीं, कोई प्रयास नहीं, बस बहे जा रहे हैं। नदी भागी जा रही है, वह आपको भी ले जाएगी। नदी के लिए आप बोझ नहीं हैं। नदी को कोई मेहनत नहीं करनी पड़ रही है, वह भाग रही है। आप भी उसमें बहे जा रहे हैं। अब मैं चुप होता हूं, आप पांच मिनट तक बहने का अनुभव करें। और इस अनुभव को ठीक से पकड़ लें। इसको ठीक से पहचान लें, क्योंकि यह ध्यान का पहला चरण है।
बहें, छोड़ दें, बिल्कुल बह जाएं। छोड़ दें अपने को नदी में और बह जाएं। बहे जा रहे हैं, नदी भागी जा रही है, बहे जा रहे हैं। हम उस नदी में बहे जा रहे हैं। तैरते नहीं हैं, प्रयत्न नहीं करते, नदी खुद बही जा रही है और हमें भी बहाए ले जा रही है। छोड़ दें बिल्कुल अपने को और बह जाएं। बहुत हलकापन लगेगा, बहुत ताजगी लगेगी। मन भी बिल्कुल शांत हो जाएगा। बहें, सब बोझ उतर जाएगा, मन का तनाव उतर जाएगा। बहें। छोड़ दें बिल्कुल, नदी बहा ले जाएगी। छोड़ दें। बिल्कुल ऐसा छोड़ दें जैसे मां की गोदी में बच्चा छोड़ देता है। ऐसा नदी की गोदी में अपने को छोड़ दें, नदी ले जाएगी। बहें, बिल्कुल बह जाएं। और बहते-बहते ही मन बिल्कुल हलका और शांत हो जाएगा। और एक गहरी ताजगी भीतर भर जाएगी। और भीतर सब शीतल हो जाएगा।
बह रहे हैं, बह रहे हैं, बहे जा रहे हैं। तैरना नहीं है, प्रयत्न नहीं करना, हाथ भी नहीं हिलाना, नदी बहाए ले जा रही है, हम बहे चले जा रहे हैं। कुछ करना नहीं है, सिर्फ बह जाना है। पहाड़ चमक रहे धूप में, नीली गहरी नदी भागी चली जा रही है, हम भी उसमें बहे चले जा रहे हैं। देखें, सब शीतल हो जाएगा, हलका और शांत, मन का सब तनाव गिर जाएगा। बहने के इस अनुभव को ठीक से समझ लें, पहचान लें। ध्यान का पहला चरण यही है। फिर धीरे-धीरे नदी के बाहर निकल आएं। देखें, बाहर किनारे पर खड़े होकर फिर से देखें, नदी भागी जा रही है, और किनारे पर खड़े होकर अनुभव करें, बहने के पहले और बहने के बाद में भीतर कुछ फर्क पड़ा। मन कुछ हलका हुआ। शांत हुआ। ताजा हुआ। नया हुआ। किनारे

पर एक क्षण खड़े होकर पहचानें, कैसा सब ताजा हो गया। कैसा सब शांत हो गया।
मन बिल्कुल हलका हो गया। फिर धीरे-धीरे आंख खोल लें, दूसरे प्रयोग को समझें, फिर दूसरा प्रयोग करें।
पहला प्रयोग हैः बहने का अनुभव। बहने का अनुभव तैरने के अनुभव के ठीक उलटा है। तैरने में हमें कुछ करना पड़ता है। बहने में नदी कुछ करती है। ध्यान तैरने जैसा नहीं है, बहने जैसा है। दुकान हम चलाते हैं तो हमें कुछ करना पड़ता है, ध्यान हम करते हैं तो परमात्मा कुछ करता है। हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता। हमें इतना ही करना पड़ता है कि हम उसे बाधा न दें और वह जो करना चाहता है उसे करने दें। ध्यान का अर्थ है, हम बाधा न देंगे और परमात्मा जो भी हमारे साथ करना चाहता है हम उसे करने के लिए सुविधा देंगे। हम उसे करने देंगे, हम अपने को खुला छोड़ देंगे। वह आ जाए और जो उसे करना हो कर ले। सूरज निकला हो घर के बाहर और घर में अंधेरा है। हमने द्वार बंद किए हैं और हम किसी से पूछें कि हमें सूरज की किरणों को भीतर लाना है, हम क्या करें? तो वह कहेगा, तुम कुछ न करो, सिर्फ द्वार खुले छोड़ दो, ताकि सूरज भीतर आ सके। तुम रोको भर मत, सूरज भीतर आ जाएगा। तुम रोको भर मत। तुम छोड़ दो द्वार खुला, सूरज भीतर आ जाता है। सूरज को गठरियों में बांध कर तो भीतर नहीं लाया जा सकता। उसकी किरणों को मुट्ठियों में बांध कर तो हम घर के भीतर नहीं ला सकते। डब्बों में बंद करके तो हम भीतर नहीं ला सकते। हम सिर्फ एक काम कर सकते हैं--निगेटिवली, नकारात्मक, और वह यह कि हम दरवाजा खुला छोड़ सकते हैं। फिर सूरज आ जाएगा।
बहने का अनुभव अपने को छोड़ देने का अनुभव है ताकि परमात्मा कुछ करना चाहे तो वह कर सके। और परमात्मा की अनंत शक्तियां इतना कर सकती हैं जिसका हिसाब नहीं। हम सिर्फ बाधा न दें। हम बीच में खड़े न हों, हम छोड़ दें और कहें कि जो होना है वह हो।
अब दूसरा अनुभव हैः मृत्यु का। आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें।
और पांच मिनट के लिए मृत्यु के अनुभव में उतरें। आंख बंद करें, शरीर कोढीला छोड़ दें। और कोई किसी दूसरे की फिकर में न रहे, क्योंकि दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बीच-बीच में किसी को देखें कि किसको क्या हो रहा है। किसी से कोई मतलब नहीं है। आपको क्या हो रहा है, यह सवाल है। किसी को कुछ हो रहा है या नहीं हो रहा है यह मूल्य ही नहीं है कुछ। तो किसी को, किसी दूसरे को देखने की फिकर छोड़ देनी चाहिए, अन्यथा वह दूसरे को देखने में अपने को देखने से वंचित रह जाएगा। आंख बंद करें। और आंख बंद करने को इसीलिए कहता हूं ताकि आप दूसरे की फिकर छोड़ दें, भीतर अकेले ही रह जाएं। आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। अब दूसरा चित्र आंख के सामने लाएं। मरघट पर खड़े हैं, चिता जल रही है, आकाश की तरफ लपटें दौड़ रही हैं। बहुत बार मरघट पर गए होंगे, लेकिन किसी और को जलाने। आज अपने को ही जलाने पहुंच गए हैं। मित्र, प्रियजन सब चारों तरफ इकट्ठे हैं। चिता की लपटों में अंधेरे में भी उनके चेहरे दिखाई पड़ रहे हैं। गौर से देखें, चारों तरफ मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे हैं। चिता जल गई है, और चिता पर कोई और नहीं चढ़ा है, हम ही चढ़े हैं, हम ही पड़े हैं--वह भी देख लें ठीक से कि चिता पर हम ही हैं कोई और नहीं है। किसी और को बहुत बार चिता पर चढ़ाया, किसी दिन हमको बहुत और लोग चढ़ाएंगे। ध्यान में हम खुद ही अपने को चढ़ा कर देख लें कि क्या होगा! चढ़ा दें चिता पर। आग में अपने को ही रख दिया है। यह हमारा ही चेहरा है जो चिता पर जल रहा है। ये हमारे ही हाथ, यह हमारा ही शरीर। चिता ही नहीं जल रही, हम भी जल रहे हैं। लपटें भागी जा रही हैं आकाश की तरफ। थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा। पांच मिनट के लिए अपने को चिता पर जलता हुआ देखते रहें। देखें... चिता जल रही है, लपटें आकाश की तरफ दौड़ी चली जा रही हैं। हवाएं हैं तेज, लपटों को उभारती हैं, भपकाती हैं। हम ही जल रहे हैं, हाथ-पैर जल रहे हैं, चेहरा जल रहा है, शरीर जल रहा है। सब जला जा रहा है। सब जला जा रहा है... देखते रहें पांच मिनट तक। सब जला जा रहा है। ताकि वही शेष रह जाए जो नहीं जल सकता और वह जल जाए जो जल सकता है।
जल रहे हैं... स्वयं ही जले जा रहे हैं... लपटें बढ़ती जा रही हैं... सब जलता जा रहा है। थोड़ी देर में राख ही शेष रह जाएगी। लपटें बढ़ती जाती हैं और

राख भी बढ़ती जाती है। लपटें बढ़ती जाती हैं और हम जलते जा रहे हैं। सब समाप्त हुआ जा रहा है...
देखें... चेहरे धीरे-धीरे वापस लौटने लगे, मरघट पर जो इकट्ठे थे वे वापस जा रहे हैं, वे लौट रहे हैं, उनकी पीठ दिखाई पड़ने लगी है, वे वापस चल पड़े हैं, उनके पैरों के पदचाप सुनाई पड़ने लगे हैं। वे जा चुके हैं। मरघट अकेला रह गया, चिता ही रह गई। और राख का ढेर इकट्ठा हुआ चला जा रहा है। मिट जाएं, जल जाएं, समाप्त हो जाएं, ताकि वही शेष रह जाए जो न जलता है, न मिटता है, न समाप्त होता है। तो आग की लपटें भी छोटी होने लगी हैं। राख का ढेर ही पड़ा रह जाएगा। थोड़ी देर में लपटें भी नहीं होंगी, अंगारे भी बुझ जाएंगे, मरघट एकांत अकेला अंधेरे में डूबा और राख का एक ढेर पड़ा रह जाएगा।
ठीक से देख लें इस ढेर को, इस मिटने को। ध्यान का यह दूसरा चरण हैः स्वयं का मिट जाना। मिटा जा रहा है, जला जा रहा है, सब समाप्त हुआ जा रहा है। अंगारे भी बुझे-बुझे जा रहे हैं, आग का ढेर पड़ा रह गया है। ये हम ही हैं जो राख का ढेर पड़ा रह गया है, ये हम ही हैं। मिट्टी मिट्टी में वापस लौट गई है। इसे ठीक से देख लें, ठीक से पहचान लें। मरघट निर्जन हो गया, अंधेरा घिर गया, लपटें बुझ गईं, अंगारे बुझ गए। राख का ढेर पड़ा रह गया है। सब मिट गया। इस भाव के आते ही कि सब मिट गया है, गहरी शांति उतर जाएगी। प्राण के भीतरी कोनों तक सन्नाटा छा जाएगा। इस भाव के आते ही कि मैं ही मिट गया हूं, सब तनाव बिखर जाएंगे, सब अशांति बिखर जाएगी, सब चिंता खो जाएगी। वे सब तो मेरे साथ थीं, मेरी चिता में जल गईं--चिंताएं भी, तनाव भी, अशांति भी। अब तो एक सन्नाटा, एक शून्य भीतर रह गया है। सब जल गया, राख का ही ढेर पड़ा रह गया है। और जब हम ही मिट गए तो कैसी चिंता, कैसी अशांति, कैसा दुख, कैसी पीड़ा! सब समाप्त हो गया। इस मिटे होने की स्थिति को ठीक से समझ लें। ध्यान का यह दूसरा चरण है।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें, धीरे-धीरे आंख खोल लें और ध्यान के तीसरे चरण को समझें और प्रयोग करें।
पहली बात हैः बह जाना। दूसरी बात हैः मिट जाना। और तीसरी बात हैः तथाता। तथाता ध्यान का केंद्र है। तथाता का अर्थ हैः जो है, हम उसके साथ राजी हैं, हमारा कोई विरोध नहीं है। तथाता का अर्थ हैः नो रेसिस्टेंस, अविरोध, हमारा किसी चीज से कोई विरोध नहीं है। जो है, हम उसके वैसे होने से पूरी तरह राजी हैं। हम उससे अन्यथा की न तो मांग करते हैं, न आकांक्षा करते हैं। पक्षी चिल्ला रहे हैं, तो हम पक्षियों के चिल्लाने से राजी हैं। पक्षी हैं, चिल्लाएंगे ही। हवाएं चलेंगी, वृक्षों के पत्ते हिलेंगे, शोरगुल होगा; पत्ते हैं हिलेंगे ही, आवाज करेंगे ही। हम स्वीकार करते हैं। रास्ते पर कोई गुजरेगा, कोई गाड़ी निकलेगी, कोई ट्रेन निकलेगी, आवाज होगी, शोर होगा, हम स्वीकार करते हैं। जीवन जैसा है, हम उसे उसकी पूर्णता में स्वीकार करते हैं। तथाता का अर्थ हैः हमें सब स्वीकार है, कोई विरोध नहीं है। और जब कोई विरोध न हो तो अशांति कहां? और जब कोई विरोध न हो तो विघ्न कहां, बाधा कहां? और जब कोई विरोध न हो तो चित्त भीतर में एकदम विलीन हो जाता है, शून्य हो जाता है। विरोध में ही हम खड़े होते हैं और मजबूत होते हैं। विरोध में ही अहंकार निर्मित होता है। जितना हम विरोध करते हैं, उतना ही अहंकार मजबूत होता चला जाता है। जितना मैं कहता हूं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, उतना ही मैं मजबूत होता चला जाता हूं। जब मैं कहता हूं, जैसा है, है, ऐसा ही सही, ऐसा ही सही, ऐसा ही सही, तो "मैं" के खड़े होने का उपाय कहां!
जीवन जैसा है, अगर स्वीकृत है, तो अहंकार के बनने का उपाय नहीं। अस्वीकार से आता है अहंकार, निर्मित होता है, घना होता है, मजबूत होता है। जब मैं कहता हूं, पत्ते ऐसे न हों, हवाएं ऐसी न हों, चांद ऐसा न हो, पक्षी आवाज न करें, रास्ते पर सन्नाटा हो, तब मैं यह कह रहा हूं कि मैं अपने को सब पर थोप दूं, मेरी आज्ञा से सब चले, मैं सबके ऊपर बैठ जाऊं, मैं मालिक हो जाऊं। लेकिन जब मैं कह रहा हूं, जो जैसा है चले, धन्यभाग। जो जैसा है चले, स्वीकार। जो जैसा है चले, आभार। जो जैसा है, कृतज्ञ हूं। जो जैसा चल रहा है,

ठीक है। तब मैं अपने को थोपता नहीं, तब मैं विदा हो जाता हूं। तब मैं सबके साथ एक हो जाता हूं।
तथाता का अर्थ हैः सर्व-स्वीकृति, टोटल एक्सेप्टेंस, जो है, वैसा ही स्वीकार है। और अगर पांच मिनट भी सब स्वीकार किया, तो हैरान हो जाएंगे कि मन कैसी शांति के नये लोकों में प्रवेश कर जाता है। पांच मिनट के लिए तथाता का प्रयोग करें। और ठीक से समझ लें। फिर इन तीन प्रयोगों को इकट्ठा हम ध्यान में करेंगे।
आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। आंख बंद कर ली है, शरीर कोढीला छोड़ दिया है। हमारा कोई विरोध नहीं, जगत जैसा है, जीवन जैसा है, हमें स्वीकृत है। देखें, रास्ते पर आवाज हो रही है, वह हमें स्वीकार है, हमारे मन में कोई विरोध नहीं है। भीतर ठीक से देख लें, हमारा कोई विरोध नहीं। पक्षी शोर कर रहे हैं, हमें स्वीकार है। हमारा कोई विरोध नहीं। धूप पड़ रही है, हमें स्वीकार है। हमारा कोई विरोध नहीं है। जो है, हमें स्वीकार है। हमारा कोई विरोध नहीं है। बाहर ही नहीं, भीतर भी। अगर पैर दुखने लगा है, अगर पैर शून्य हो गया है, अगर पैर पर झनझनाहट चल रही है, हमें स्वीकार है। हमारा कोई विरोध नहीं है। अगर मन में कोई विचार चल रहा है, चल रहा है, हमें स्वीकार है। हमारा कोई विरोध नहीं है। अविरोध के भाव में पांच मिनट के लिए लीन हो जाएं। जो है, है, हम राजी हैं, हम तैयार हैं, वैसा ही हो, अन्यथा की मांग नहीं, अन्यथा की आकांक्षा नहीं। पांच मिनट के लिए, जो है, हम उसके साथ पूरी तरह राजी हैं। और देखें कि राजी होते-होते, होते-होते सब बिखर जाता है और भीतर एक गहरी शांति, एक शून्य, एक खालीपन आ जाता है।
अब पांच मिनट के लिए चुपचाप तथाता के इस भाव में डूब जाएं। छोड़ दें, अपने को छोड़ दें, जो जैसा है, है। सबके लिए राजी हैं। और सबके लिए राजी होते ही सबके प्रति प्रेम का बहना शुरू हो जाता है। तब पक्षियों की आवाजें और ही सुनाई पड़ती हैं, रास्ते का शोरगुल और ही तरह का मालूम होता है, अपना ही। सब तरफ प्रेम बहने लगता है। जिससे हम राजी हो जाते हैं उसी की तरफ प्रेम बहने लगता है। और मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। राजी हैं, राजी हैं, स्वीकृत है, स्वीकृत है। जो भी है, जैसा भी है, स्वीकृत है। यह भी स्वीकृत है, वह भी स्वीकृत है, जो भी है स्वीकृत है। एक स्वीकार के भाव में डूब जाएं। सब स्वीकार है। धूप गर्म है यह भी स्वीकार है, छाया ठंडी है यह भी स्वीकार है। छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... सब स्वीकार है। सर्व के साथ एक हो जाते हैं-- जैसे ही हम स्वीकार करते हैं सर्व के साथ एक हो जाते हैं। फिर हवाएं अलग नहीं, धूप अलग नहीं, पक्षियों की आवाजें अलग नहीं, वृक्षों की हलचल अलग नहीं, हम भी एक हैं इस सबके साथ। छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें और स्वीकार कर लें। डूब जाएं और स्वीकार कर लें। सब स्वीकार है। छोड़ दें और स्वीकार कर लें। एक पांच मिनट के लिए सब स्वीकार है। छोड़ दें... छोड़ दें... सब स्वीकार है। सब स्वीकार है। और लीन हो जाएं। यह जो विराट का सागर है चारों ओर, उसमें लीन हो जाएं। छोड़ दें... सब स्वीकार है। और स्वीकार करते ही मन गहरी शांति और आनंद से भर जाता है। स्वीकार करते ही मन शांति से भर जाता है। इस तरफ स्वीकार का द्वार खुलता है, उस तरफ शांति का सागर भीतर आ आता है। तथाता के इस अनुभव को ठीक से पहचान लें, यह ध्यान की आत्मा है, ध्यान
का प्राण है। ध्यान के गहरे से गहरे भाव में तथाता है। ठीक से पहचान लें। सर्व स्वीकार की इस भाव-दशा को ठीक से पकड़ लें। इसे ठीक से पहचान लें, ध्यान का यह केंद्र है, ध्यान की यह आत्मा है। सब स्वीकार है और मन शांत हो गया और मन शून्य हो गया। जगत से कोई विरोध नहीं, जगत जैसा है हम उसके लिए राजी हैं। क्योंकि हम जगत के ही हिस्से हैं, विरोध कैसा! दुश्मनी कैसी! शत्रुता कैसी! और तब प्राणों का बाहर के प्राणों से मिलन हो जाता है।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें। फिर ध्यान के प्रयोग को समझें और अंतिम प्रयोग ध्यान का करें। धीरे-धीरे आंख खोल लें।
ये तीन बातें हमने समझीं। बहने की भावना; मरने की, मिट जाने की भावना
और सर्व-स्वीकार की, तथाता की भावना। अब इन तीनों भावनाओं का इकट्ठा हम ध्यान में प्रयोग करेंगे। इस इकट्ठे प्रयोग में बहने के, मिटने के, जो है,

है, इसके स्वीकार के गहरे परिणाम होंगे। शरीर गिर सकता है, शरीर झुक सकता है। उसे फिर सम्हाल कर बैठेंगे तो वहीं अटक जाएंगे। उसे सम्हाल नहीं लेना है, गिरता हो गिर जाए। और घबड़ाएंगे नहीं कि चोट लग जाएगी। चोट कभी भी न लगेगी, जब शरीर अपने आप गिरता है तो चोट नहीं लेता। चोट का सवाल ही नहीं है। उसे सम्हाल कर अगर बैठें तो वहीं अटक जाएंगे। फिर उतना रेसिस्टेंस, उतना विरोध शुरू हो जाएगा। फिर उतनी स्वीकृति न रही। आंख से आंसू बह सकते हैं। मन एकदम हलका होगा, आंख से आंसू गिर जाएंगे। उनको भी रोक लिया, तकलीफ हो जाएगी। किसी को रोना भी आ सकता है, तो उसे भी रोकने की जरूरत नहीं। जो भी होता हो, इन पंद्रह मिनटों के लिए जो भी हो, हो, हमें उससे कोई बाधा नहीं है। और कुछ भी निकल जाएगा तो अच्छा है। भीतर बहुत शांति और हलकापन छूट जाएगा।
अब हम चौथे अंतिम प्रयोग के लिए ध्यान के लिए बैठें।
आंख बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। और थोड़ी देर में सुझाव दूंगा, मेरे साथ अनुभव करें। अनुभव करेंगे तो वैसा ही परिणाम फौरन होना शुरू हो जाएगा।
आंखें बंद कर लें, शरीर कोढीला छोड़ दें। अब मैं सुझाव देता हूं, मेरे साथ अनुभव करें। शरीर शिथिल हो रहा है। ऐसा भाव करें कि शरीर बिल्कुल शिथिल, रिलैक्स होता चला जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ते जाएं ढीला--ढ़ीला--ढ़ीला... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... धीरे-धीरे शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाएगा। पता होगा जैसे है ही नहीं। धीरे-धीरे शरीर का पता ही बंद हो जाएगा। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें... शरीर शिथिल हो रहा है... झुकता होझुक जाए, गिरता हो गिर जाए। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है। और शरीर के शिथिल होते-होते भीतर एक गहरी शांति छाती जाएगी। शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ दें शिथिलता में जैसा नदी में छोड़ा था बह जाने को। छोड़ दें, बह जाएं। शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है...
छोड़ दें... छोड़ दें... छोड़ दें... शरीर शिथिल हो गया है... श्वास शांत हो रही है... अनुभव करें श्वास शांत होती जा रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास धीमी और शांत होती जा रही है। धीरे-धीरे श्वास बिल्कुल शांत होती मालूम पड़ेगी। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत होती जा रही है... और जब श्वास मालूम पड़ेगी शांत हो रही है तो ऐसा ही लगेगा कि हम मिटे जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं। जैसा चिता पर लगा था कि मिट्टी का एक ढेर रह गया है। श्वास के शांत होते-होते लगेगा शरीर मिट्टी का एक ढेर रह गया है, राख का एक ढेर। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत होती जा रही है... श्वास बिल्कुल शांत होती जा रही है... श्वास शांत होती जा रही है...
श्वास शांत हो गई है, शरीर शिथिल हो गया है, श्वास शांत हो गई है--अपने
को बिल्कुल छोड़ दें और अब तीसरे तथाता में ठहर जाएं। सब स्वीकार है। शरीर ढीला हो गया, श्वास शांत हो गई। और हम सारे जगत से एक होने के करीब पहुंच गए। अब हमें सब स्वीकार है, जो हो रहा है, हो रहा है। पक्षी आवाज कर रहे हैं, वृक्ष हवाओं में कंप रहे हैं, सूरज की रोशनी बरस रही है, रास्ते पर आवाजें हैं, सब स्वीकार है। जो भी चारों तरफ है वह हमें स्वीकार है। इसे जानते रहें, स्वीकार कर लें, जानते रहें, साक्षी बन जाएं। हम सिर्फ साक्षी हैं, दृष्टा हैं, जान रहे हैं, जान रहे हैं और सब हमें स्वीकार है। और धीरे-धीरे भीतर के पर्दे उठ जाएंगे। और धीरे-धीरे भीतर के द्वार खुल जाएंगे। और ऐसी शांति बरस पड़ेगी जैसी कभी न जानी हो। और ऐसा प्रकाश भीतर छा जाएगा जो अनजाना है, कभी पहचाना नहीं। और ऐसे आनंद के झरने भीतर फूट पड़ेंगे जो रोएं- रोएं को पुलकित कर जाएंगे, नया कर जाएंगे। छोड़ दें।
अब दस मिनट के लिए तथाता के साक्षी के भाव में ठहरे रह जाएं। शरीर शिथिल हुआ, श्वास शांत हो गई और हमने सारे जगत को स्वीकार कर लिया। जान रहे

हैं, सिर्फ पहचान रहे हैं, देख रहे हैं, समझ रहे हैं--ज्ञातामात्र हैं, द्रष्टामात्र हैं, साक्षीमात्र हैं। कुछ कर नहीं रहे। पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम सुन रहे हैं। हवाएं स्पर्श कर रही हैं, हम जान रहे हैं। सूरज की किरणें बरस रही हैं, हम पहचान रहे हैं। हम सिर्फ द्रष्टा हैं, मात्र द्रष्टा हैं और सब हमें स्वीकार है। दस मिनट के लिए स्वीकृति में खो जाएं। साक्षीमात्र रह गए हैं, सर्व स्वीकार है और हम साक्षी रह गए हैं, सिर्फ एक गवाह, सिर्फ जान रहे हैं, पहचान रहे हैं, सिर्फ साक्षीमात्र। और मन एकदम गहरी शांति में उतर जाएगा। गहरी से गहरी शांति भीतर प्रकट हो जाएगी और मन गहरे आनंद में डूब जाएगा, रोआं-रोआं आनंद से पुलकित हो जाएगा। और एक प्रकाश भीतर भर जाएगा, भीतर का सब अंधेरा टूट जाएगा। इसी शांति में, इसी आनंद में, इसी प्रकाश में प्रभु का अनुभव उपलब्ध होता है। चारों तरफ उसकी मौजूदगी प्रतीत होती है। तब पक्षी पक्षी नहीं रह जाते; तब पौधे पौधे नहीं रह जाते; तब हवाएं हवाएं नहीं रह जातीं; तब सूरज की गर्मी सूरज की गर्मी नहीं रह जाती। तब सब उसी परमात्मा का नृत्य हो जाता है। सब तरफ उसी का नृत्य, उसे के पदचाप सुनाई पड़ने लगते हैं।
देखें और साक्षीमात्र रहें। सर्व स्वीकार है और साक्षीमात्र रहे गए हैं। रास्ते पर आवाजें हैं और हम राजी हैं। जो भी हो रहा है, हम राजी हैं। जो भी है उससे हमारा कोई विरोध नहीं है। जैसे एक बूंद सागर में खो जाती है, ऐसे हम सर्वस्व में खोजाने को राजी हैं। यह जो सर्व है उसमें हम खो जाने को राजी हैं। जैसे कोई नदी सागर में लीन हो जाती है, ऐसा हम उस विराट के सागर में खोने को राजी हैं।
छोड़ दें... छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें अपने को, खो जाएं, बह जाएं, मिट जाएं। सब स्वीकार कर लें। और फिर देखें भीतर कैसी शांति के फूल खिलने लगते हैं। और फिर देखें भीतर कैसी आनंद की वीणा बजने लगती है। और फिर देखें कैसे हजार-हजार दीये जल जाते हैं परमात्मा के प्रकाश के। सर्व स्वीकार है और हम साक्षी हैं। खो गए हैं, मिट गए हैं, लीन हो गए हैं, एक हो गए हैं सर्व के साथ। देखें, भीतर कैसी शांति, कैसा आनंद, कैसा आलोक फैल गया है।
फिर धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। और प्रत्येक श्वास में बहुत आनंद, बहुत शांति मालूम होगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास में बहुत आनंद, बहुत शांति मालूम होगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। जो भीतर जाना है उसे बाहर भी अनुभव करें। धीरे-धीरे आंख खोलें। आंख किसी की न खुले, तो दोनों आंखों पर हाथ लगा लें, फिर धीरे से आंख खोलें। धीरे-धीरे आंख खोलें। जो गिर गए हैं, वे धीरे-धीरे गहरी श्वास लें फिर बहुत आहिस्ता से उठें। जल्दी उठने की न करें। झटके से न उठें, बहुत आहिस्ता से उठें।
इस प्रयोग को रात सोते समय बिस्तर पर करेंगे और फिर करते-करते ही सो जाएंगे। ताकि पूरी रात मन के भीतर गहरे में ध्यान की धारा बहती रहे। फिर सुबह कल यहां आकर प्रयोग को करें। यहां आने के पहले स्नान करके आएं, ताजे कपड़े पहन कर आएं। और घर से ही बोलना-चालना बंद करके आएं, चुप, मौन। नीचे देखते हुए आएं। आंखें भी नीची रखें। चुप आएं, चुपचाप यहां आकर बैठ जाएं। यहां भी बात न करें।

सुबह की हमारी बात पूरी हुई।

जीवन ही है प्रभु
पांचवां प्रवचन

प्रभु का द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
"जीवन ही है प्रभु" इस संबंध में एक मित्र ने पूछा है, कैसे दिखाई पड़े फिर हमें कि जीवन ही प्रभु है? क्योंकि हमें तो चारों ओर दोष ही दिखाई पड़ते हैं। सबमें दोष दिखाई पड़ते हैं। "क्यों दिखाई पड़ते हैं सबमें दोष?" इस संबंध में उन्होंने पूछा है।

प्रभु की खोज में एक सूत्र यह भी है, इसलिए इसे समझ लेना जरूरी है। निश्चित ही दोष दिखाई पड़ते हैं दूसरों में। कारण क्या है? कारण है सिर्फ एक--अपने अहंकार की तृप्ति। दूसरे में दोष दिखाई पड़ता है। दूसरे में दोष की खोज चलती है। उसका राज छोटा सा है।
शायद यह घटना सुनी होगी कि अकबर ने एक दिन अपने दरबार में एक लकीर खींच दी और अपने दरबारियों से कहाः इसे बिना छुए, बिना मिटाए छोटी कर दो। वे बहुत हार गए, परेशान हो गए। बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर खींच दी। उसी छोटी लकीर के पास एक बड़ी लकीर खींच दी। वह लकीर उतनी ही रही, न मिटाई, न छोटी की, लेकिन छोटी हो गई।
जब हम दूसरे में दोष की तलाश में निकल जाते हैं, तब हम दूसरे की लकीर छोटी कर रहे हैं; ताकि हमें अपनी लकीर बड़ी लकीर मालूम पड़ने लगे। अपने को बड़ा देखने का सरलतम रास्ता यही है कि हम दूसरे को छोटा करके देखना शुरू कर दें। दूसरा रास्ता अपने को बड़ा करने का बहुत कठिन है, कि हम सच में अपने को बड़ा करें। उसमें अपने को छूना पड़ेगा, बदलना पड़ेगा, मिटाना पड़ेगा, नया करना पड़ेगा। सरल रास्ता यह है कि अपने को छूना ही न पड़े। अपने में कुछ फर्क ही न करना पड़े। हम जैसे हैं वैसे ही रहें, और बड़े हो जाएं। तो सरल रास्ता यह है कि हमारे पास जो भी आते हों, उनको हम छोटा करके देखें।
अगर जिंदगी में बड़ी यात्रा करनी हो और जीवन को उन महान रास्तों पर ले जाना हो कि जीवन में महानता का सूर्य निकले, तब तो फिर बहुत कुछ करना पड़ेगा। खुद को मिटाना पड़ेगा, नया करना पड़ेगा; खुद को बदलना पड़ेगा। मेहनत की बात होगी, श्रम लगेगा, साधना लगेगी। इतनी मेहनत में जाने को कोई आतुर नहीं है, उत्सुक नहीं है। तो सरल तरकीब, शॉर्टकट, निकटतम का रास्ता--जिसमें बिना कुछ किए मुफ्त में हम बड़े हो जाते हैं, वह एक ही है कि जो भी हमारे निकट आता हो, उसे हम छोटा करके देख लें। और जब हम तय ही कर लें किसी को छोटा करके देखने का तो दुनिया की कोई ताकत हमें रोक नहीं सकती। क्योंकि हमारी मर्जी की बात है। हम छोटा करके देख ही सकते हैं। हम किसी को भी छोटा करके देख सकते हैं।
लेकिन इस भांति जो हमारे भीतर बड़ा हो जाता है, वह हमारी आत्मा नहीं है। इस भांति जो हमारे भीतर बड़ा हो जाता है, उसी का नाम अहंकार है। अगर हम अपने को बदलेंगे तो आत्मा बड़ी हो जाएगी। इतनी बड़ी हो सकती है कि पूरे परमात्मा के साथ एक हो जाए। अपने को बदलेंगे तो आत्मा बड़ी होगी और अपने को बिना बदले अगर बड़ा करना है तो अहंकार बड़ा होगा, मैं बड़ा हो जाऊंगा। आत्मा तो और छोटी हो जाएगी।
और यह भी ध्यान रहे, अहंकार जितना बड़ा होगा, आत्मा उतनी छोटी हो जाएगी
और अहंकार जितना छोटा होगा, आत्मा उतनी बड़ी हो जाएगी।
तो जो व्यक्ति भी अपने अहंकार को बड़ा करने में लगा है, वह जाने अनजाने बहुत गहरे अर्थों में नुकसान उठा रहा है। हां, ऊपर उसे फायदे दिखाई पड़ेंगे। अहंकार को बड़ा करके देखेगा, दूसरे छोटे दिखाई पड़ेंगे, खुद बड़ा दिखाई पड़ेगा। लेकिन जितना अहंकार बड़ा होगा, उतनी भीतर आत्मा छोटी होती चली जाएगी। और जितना अहंकार बड़ा होगा, परमात्मा से मिलन का रास्ता उतना ही मुश्किल होता चला जाएगा। क्योंकि मेरे "मैं" के अतिरिक्त मुझे और कोई भी रोके हुए नहीं है। और जब तक मैंने जिद्द की है कि मैं "मैं" रहूंगा तब तक

मैं विराट से मिल नहीं सकता हूं। वही तो बाधा बनेगी। इसीलिए हम दूसरे में दोष देखने के लिए आतुर होते हैं।
इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरों में दोष नहीं होते। इसका यह मतलब भी नहीं है कि दूसरों में दोष हैं ही नहीं। दूसरों में दोष हों या न हों, यह सवाल गौण है। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या हम दूसरों में दोष देख कर अपने को बड़ा करने की चेष्टा में संलग्न हैं? अगर हम इस चेष्टा में संलग्न हैं तो हम बहुत आत्मघाती हैं। हम अपने हाथ से अपने को नुकसान पहुंचा रहे हैं, किसी और को नहीं। जिसके हम दोष देख रहे हैं उसे तो फायदा भी हो सकता है, हमारे दोष देखने से। लेकिन हमें फायदा नहीं हो सकता। हो सकता है, हमारे दोष देखने से वह दोष को बदलने में लग जाए। वह अपनी कमियों को बदलने में लग जाए, हमारे दोष देखने से। लेकिन अगर हमारा अहंकार तृप्त होता हो तो हम बहुत खतरनाक ढंग से अपने ही हाथ-पैर काटने में लगे हैं। हमें कोई हित न होगा।
लेकिन एक इससे उलटी भ्रांति भी चलती है। एक भ्रांति तो यह है कि हम सबमें दोष ही देखेंगे। इससे एक उलटी भ्रांति भी है कि अगर दोष होंगे भी तो हम आंख बंद कर लेंगे, हम दोष न देखेंगे। वह उलटी भ्रांति भी खतरनाक हो सकती है; और वह भी अहंकार को बढ़ाने वाली हो सकती है। अगर मैंने यह तय कर लिया है कि मैं किसी के दोष देखूंगा ही नहीं, तो मेरे भीतर एक नये तरह का अहंकार बढ़ना शुरू होगा कि मैं ऐसा आदमी हूं जो किसी के दोष कभी नहीं देखता। चोर सामने चोरी करेगा तो मैं आंखें बंद कर लूंगा, और चार गुंडे एक स्त्री पर हमला करेंगे तो मैं पीठ फेर कर अपने रास्ते पर चला जाऊंगा। मैं किसी के दोष नहीं देखता हूं। और चूंकि मैं दोष नहीं देखता हूं इसलिए मैं एक बहुत महान आदमी हूं।
पहली भूल में अहंकार तृप्त होता है, दूसरी भूल में भी तृप्त हो सकता है। इसलिए असली सवाल दोष देखने और न देखने का नहीं है, सवाल है देखने से, न देखने से अहंकार को तो नहीं भर रहे हैं हम अपने? लेकिन जो आदमी अहंकार नहीं भर रहा है, वह सिर्फ देखता है। उसे दोष दिखाई पड़ सकते हैं, निर्दोषता भी दिखाई पड़ सकती है। वह वही देखता है जो है, उस जो है के देखने से अपने अहंकार को न भरता है, न छोटा करता है, न बड़ा करता है।
एक बात चलती है कि साधु को किसी के दोष नहीं दिखाई पड़ते। गलत है वह बात। एकदम व्यर्थ है वह बात। असाधु को सबमें दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं, यह भी झूठ है। और साधु को बिल्कुल दोष न दिखाई पड़ें, यह भी उतना ही झूठ है। दोष हैं। और एक ही आदमी में दोनों बातें हो सकती हैं। एक आदमी पापी भी हो सकता है और साथ ही बड़ा पुण्यात्मा भी हो सकता है। इन दोनों में कुछ विरोध नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी पुण्यात्मा ही होता है, और ऐसा भी नहीं है कि एक आदमी पापी ही होता हो। जिंदगी बहुत जटिल है। यहां एक ही आदमी में काले और सफेद रंग के सब भूत दिखाई पड़ सकते हैं। यहां एक ही आदमी घड़ी भर पहले इतनी महानता प्रकट कर सकता है, और घड़ी भर बाद एकदम क्षुद्र हो सकता है। यहां एक आदमी प्रेम कर सकता है, घृणा कर सकता है। वही आदमी। वही आदमी एकदम स्वार्थी हो सकता है, और वही आदमी किसी क्षण में परार्थ में अपना जीवन भी लगा सकता है।
जीवन बहुत जटिल है। आदमी सरल-सीधा नहीं है कि हम एक निर्णय कर लें कि
यह आदमी कांटा ही कांटा है, और वह आदमी फूल ही फूल है। नहीं, यहां एक ही गुलाब पर फूल भी लगते हैं और कांटे भी। यहां जिंदगी बहुत जटिल है। यहां कांटे और फूल एक ही पौधे में भी लग जाते हैं। असाधु की एक भूल है कि वह कहता है, हमें दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। साधु की उलटी भूल है और असल में साधु जिसे हम कहते हैं वह असाधु का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। असाधु जैसा खड़ा है, साधु उससे उलटा शीर्षासन करके खड़ा हो जाता है और साधु हो जाता है। जो-जो असाधु करता है वह वह नहीं करता है। उससे उलटा करने लगता है। असाधु को दोष दिखाई पड़ते हैं तो साधु को दोष दिखाई ही नहीं पड़ते। लेकिन जो आदमी शांत, मौन, सिर्फ देखने में साक्षी भाव रखेगा, उसे दोष भी दिखाई पड़ेंगे और निर्दोषता भी दिखाई पड़ने लगेगी। उसे जो बुरा है, वह बुरा भी दिखाई पड़ेगा जो भला है वह भला भी दिखाई पड़ेगा।

फर्क इतना ही पड़ेगा कि वह दूसरे में भला देखने के लिए आतुर नहीं है, न दूसरे में बुरा देखने को आतुर है। वह वही देखने को आतुर है जो है। जो है, सत्य को ही देखने को आतुर है। अपनी तरफ से कुछ भी थोपने को आतुर नहीं है। असाधु कहता है--हम सब पर दोष थोप कर रहेंगे। साधु कहता है--हम सबको निर्दोष करके रहेंगे। वे दोनों अपनी इच्छाएं दूसरों पर थोपते हैं। लेकिन इन दोनों से भिन्न, जिसको हम ठीक-ठीक द्रष्टा कहें, वह वही देखता है, जो है। वह उस जो है में जरा भी फर्क नहीं करता। जो जैसा है, वैसा ही देखता है। और जब कोई दूसरे को वैसा ही देखता है जैसा है, तभी वह समर्थ हो पाता है अपने को भी वैसा ही देखने में जैसा वह है।
जो दूसरे में दोष देखेगा, वह सदा अपने को निर्दोष देखेगा। जो दूसरे को निर्दोष देखेगा, वह सदा अपने को दोषी देखेगा। मैंने कहा कि एक-दूसरे के उलटे हैं ये। अगर एक आदमी तय कर ले कि मैं सबमें बुरा देखूंगा तो उसे सबमें बुराई दिखाई पड़ेगी, सिर्फ अपने को छोड़ कर। क्योंकि नहीं तो फिर मजा ही न रह जाएगा दूसरे में बुराई देखने से। अपने को भला बनाता जाएगा, दूसरे को बुरा बनाता जाएगा। इससे उलटा आदमी भी है। वह कहता है कि हम किसी में दोष नहीं देखेंगे। सबको निर्दोष देखेगा तो अपने में दोष देखना शुरू कर देगा। यहां तक भी कर सकता है साधु कि भूल आप करें और दंड वह अपने को दे। चोरी आप करें, उपवास वह करे, यह भी कर सकता है। लेकिन यह उलटी स्थिति हो गई, यह सम्यक दर्शन न हुआ, राइट वि.जन न हुआ। यह ठीक-ठीक दर्शन न हुआ।
ठीक दर्शन का मतलब है, सोने को सोना देखेंगे, मिट्टी को मिट्टी देखेंगे। वह भी आदमी पागल है जो मिट्टी को सोना देखता है और वह आदमी भी पागल है जो सोने को मिट्टी देखता है। मिट्टी को तो मिट्टी देखता है, सोने को वह सोना देखता है।
तो मैं आपसे नहीं कहता कि किसी में दोष न देखें। मैं आपसे यह कहता हूं--किसी में दोष इसलिए मत देखें कि अपने को निर्दोष सिद्ध करना है। तब गलत बात है। और मैं यह भी नहीं कहता कि सभी को निर्दोष देखें क्योंकि सभी निर्दोष नहीं हैं। अगर सभी निर्दोष होते तो दुनिया बहुत अच्छी हो गई होती, जिंदगी बदल गई होती, फिर तो साधु-संन्यासी की कोई जरूरत न होती। हम कहते तो हैं कि साधु किसी में दोष नहीं देखता तो फिर साधु समझाता क्या है, बताता क्या है, लोगों को सुधारने की कोशिश क्या कर रहा है? अगर सभी निर्दोष हैं, तो साधु को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। क्योंकि फिर बदलना किसको है? अगर सभी परमात्मा हैं, तो उपदेश किसको दिया जा रहा है? समझाया किसको जा रहा है? नहीं, कहीं कुछ भूल है जिसको बदलना है। कहीं कोई चूक है जिसे बदलना है। नहीं तो जरूरत ही नहीं है कोई।
ठीक दर्शन चाहिए, अपना भी, दूसरे का भी। स्वयं का भी, बाहर का भी। और ठीक दर्शन बहुत अदभुत बातें दिखाएगा। उस ठीक दर्शन में यह भी दिखाई पड़ेगा कि जब मैं दूसरे में दोष देख रहा हूं तो मूल कारण दूसरे का दोष है या दूसरे में दोष देखने का मेरा आनंद है, यह भी दिखाई पड़ेगा। तब मैं सोचूंगा, समझूंगा कि जब मैं किसी को चोर कहना चाहता हूं तो सच में मैं उसकी चोरी के कारण कहना चाहता हूं, या कि सिर्फ इसलिए चोर कहना चाहता हूं--ताकि मैं अपने भीतर समझ सकूं कि मैं चोर नहीं हूं।
बर्ट्रेंड रसल ने कहीं कहा है कि अगर कहीं चोरी हो जाए तो जो आदमी सबसे जोर से चिल्ला रहा हो कि चोरी हो गई, पकड़ो कोई चोर भाग गया, पहले उसको पकड़ लेना। क्योंकि बहुत संभावना यह है कि उसी ने चोरी की है। क्योंकि चोरी से बचने की सबसे सरल तरकीब यही है कि आप इतने जोर से चोरी के खिलाफ चिल्लाएं कि कोई यह सोच ही न सके कि इसने चोरी की है। कैसे आप सोचेंगे, जो आदमी खुद ही चिल्ला रहा है उसको तो फिर कोई नहीं पकड़ेगा। जो नेता भ्रष्टाचार के खिलाफ बहुत ज्यादा शोरगुल मचाता हो और कहता हो कि मिटा देंगे भ्रष्टाचार, एक साल में खतम कर देंगे, ऐसा कर देंगे, उसको तो फौरन पकड़ कर सूली पर लटका देना चाहिए। यह आदमी खतरनाक है। यह आदमी शोरगुल जो मचा रहा है, इसके पीछे कारण है। इसके पीछे कारण यह है कि इतने शोरगुल में एक बात तो पक्की हो जाएगी कि यह आदमी भ्रष्टाचारी नहीं है। फिर बाकी दुनिया होगी। कोई बदल नहीं पाता। दुनिया को अभी तक कोई नहीं बदल पाया कि

एक साल में कोई बदल दे। वह नेता का ही पता नहीं चलता कि साल भर बाद वह नेता रहा कि नहीं, कहां है, कहां नहीं। लेकिन इतने जोर से जब कोई चिल्लाता है तो उसका कारण है मनोवैज्ञानिक। सरलतम तरकीब यही है। इसीलिए जब एक चोर पकड़ा जाता है तो बाकी चोर उसकी निंदा में संलग्न हो जाते हैं फौरन। गांव में एक चोर पकड़ा जाएगा तो पूरा गांव निंदा करेगा, पूरा गांव निंदा करेगा कि बहुत बुरी बात है, चोरी बहुत बुरी बात है। और हर आदमी बढ़-बढ़ कर जोर से बात करेगा कि पड़ोसी ठीक से सुन लें कि मैं भी चोरी के खिलाफ हूं। ताकि पता चल जाए कि कम से कम मैं चोर नहीं होने वाला हूं।
जो व्यक्ति ठीक-ठीक देखने की कोशिश करेगा, उसे यह भी दिखाई पड़ेगा--उसे
यह भी दिखाई पड़ेगा कि जब मैं दूसरे में भला देख रहा हूं तो मैं थोप तो नहीं रहा हूं! है भी भला वह या मैं थोप रहा हूं। क्योंकि कुछ लोग जिद्द किए हुए हैं कि वे भला ही देखेंगे। वे लोग भी खतरनाक हैं। इस देश में ऐसा ही हो गया है। इस देश में पांच हजार साल से ऐसे लोग हुए हैं, उन्होंने कहा, हम सबमें भलाई ही देखेंगे, इसलिए आज पृथ्वी पर इस देश से बुरा देश खोजना मुश्किल है। क्योंकि बुराई देखी नहीं, तो बुराई को बदलने का उपाय भी न रहा।
जब किसी देश के सब समझदार आदमी यह तय कर लें कि हम भलाई ही देखेंगे तो फिर उस देश में बुराई इकट्ठी होती चली जाएगी, उसको बदलेगा कौन? जब दिखाई ही न पड़ेगी तो बदलेगा कौन? तो हिंदुस्तान ने अपने साधुओं को अलग खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा, हम तो सबमें भला देखते हैं, हम तो बुरा देखते ही नहीं। तो फिर बुराई को बदला कैसे जाए?
समझ लें कि सब डाक्टर तय कर लें कि हम तो बीमारी देखते नहीं, सभी में स्वास्थ्य देखते हैं, तो फिर वह देश बीमार हो जाएगा। फिर उस देश में बीमारी जब कोई देखेगा ही नहीं तो बीमारी न देखने से समाप्त थोड़े ही हो जाएगी। न देखने से और बढ़ेगी। क्योंकि देखने से पकड़ी जा सकती थी, तोड़ी जा सकती थी, मिटाई जा सकती थी। लेकिन डाक्टर सब भले आदमी हो जाएं और वे कहें कि हम बुराई देखेंगे नहीं, हम बीमारी देखते ही नहीं। हम तो मरते आदमी में भी परम जीवन देखते हैं, हम तो कहते हैं कि यह तो बिल्कुल स्वस्थ है। वह कैंसर से सड़ रहा है और हम देखते हैं कि कितना स्वास्थ्य का आनंद ले रहा है। हम तो बुराई देखते नहीं, हम तो साधु हैं। तो फिर कठिनाई हो जाएगी।
मेरी थोड़ी कठिनाई है, क्योंकि मैं जिंदगी को ठीक-ठीक देखने का आग्रह करना चाहता हूं। न तो मैं यह कहता हूं कि आप किसी पर बुराई थोप दें, उससे भी अहंकार बढ़ेगा। न मैं यह कहता हूं कि आप जबरदस्ती किसी पर भलाई थोपें, उससे भी अहंकार बढ़ेगा। मैं यह कहता हूं, जिंदगी जैसी है, उसको वैसा देखने की कोशिश करें। लकीरें मत खींचें। जितनी जो लकीर है, उसको वैसा ही देख लें कि वे कितनी हैं। दूसरी लकीर खींचने की कोशिश मत करें।
और देखने का दूसरा सूत्र भी समझ लें कि जो दूसरे में देखें, वह अपने में भी देखें। जिंदगी अलग-अलग नियम नहीं मानती है। जिंदगी के नियम एक हैं। अगर हम जिस भांति दूसरे में देखते हैं और जो नियम दूसरे के लिए बनाते हैं, वही नियम अपने लिए भी बना सकें तो जिंदगी बहुत ऊपर उठती है। लेकिन हम सब दोहरे स्टैंडर्ड में जीते हैं, दोहरे मापदंडों में। दूसरों के लिए दूसरा मापदंड होता है, अपने लिए दूसरा मापदंड होता है।
अगर मैं क्रोध करता हूं तो मैं कहता हूं कि वह परिस्थिति की वजह से भूल हो गई है। और अगर दूसरा क्रोध करता है तो वह पापी है, उसको नर्क जाना पड़ेगा। अगर मैं चोरी करता हूं तो मैं कहता हूं, मजबूरी थी। घर में खाना न था, पत्नी बीमार पड़ी थी, बच्चे रो रहे थे--मुझे चोरी करनी पड़ी। और अगर दूसरा चोरी करता है तो वह पापी है। दोहरे स्टैंडर्ड--दूसरे को और तराजू पर तौलते हैं, अपने को और तराजू पर तौलते हैं। दो तरह के बहीखाते ही नहीं हैं, दो तरह के एकाउंट्स नहीं हैं दुकानों में, आदमी के दिमाग में भी दोहरे बहीखाते हैं, दोहरे नियम हैं। दूसरे के लिए और हैं, अपने लिए और हैं, अपने को वह किसी और तराजू पर तौलता है, दूसरे को और तराजू पर तौलता है। यह बेईमानी की हद्द है। यह अनैतिकता की हद्द है। मैं इसको बड़ी से बड़ी अनैतिकता, इम्मारैलिटी कहता हूं जब हम दोहरे मापदंड का उपयोग करते हैं।

इकहरा मापदंड चाहिए। ठीक से जीवन को देखने वाला आदमी इकहरा मापदंड बनाता है। जिस तराजू पर अपने को तौलता है, उसी पर दूसरे को तौलता है। और ध्यान रहे जब भी कोई आदमी एक तराजू बनाएगा, बहुत करुणावान हो जाएगा; कठोर कभी भी नहीं रह सकता। दो तराजू बनाएगा तो कठोर हो जाएगा क्योंकि दूसरे को वह बिल्कुल पाप के तराजू पर तौल लेगा कि यह आदमी पापी है, नरक में डालो, अदालत में घसीटो, सजाएं दो, फांसी लगाओ। लेकिन जब वह एक ही तराजू रखेगा तो वह समझेगा कि जब किसी को फांसी लग रही है तो वह सिर्फ इसीलिए लग रही है कि वह फंस गया है और मैं फंसा नहीं हूं। इससे ज्यादा फर्क नहीं है। और जब वह देखेगा, जब किसी और ने पाप किया है, तो वह यह समझेगा कि किसी और ने पाप किया है; उसका कुल कारण इतना है कि उसका पाप पकड़ गया है और मेरा पाप पकड़ नहीं पाया। अगर एक तराजू होगा तो हम जानेंगे कि हर अपराधी के साथ हम अपराधी हैं और हर पापी के साथ हम पापी हैं और हर बुरे आदमी के साथ हमारी बुराई का भी हिस्सा जुड़ा हुआ है। हम भी साथ में खड़े हुए हैं। तब हम इस भांति कंडेमनेशन, इस तरह की निंदा में न लगेंगे कि लगा दो गोली, मार दो, आग लगाओ, नरक में डालो। तब हम यह कहेंगे कि जो यह आदमी कर रहा है, जो इस आदमी से हो रहा है, वह हमसे भी हो रहा है। और तब हम सोचना शुरू करेंगे कि क्या उपाय बने, कैसे उपाय बने कि आदमी का समाज बदले, जिसमें मैं भी बदलूं और वह दूसरा भी बदले। पुराने इतिहास का लंबा काल दोहरे मापदंड का काल है, इसलिए मनुष्य नैतिक नहीं हो पाया। क्योंकि नैतिकता का मूल-बिंदु करुणा ही, कंपेशन ही आदमी में पैदा नहीं हो सकी। आदमी कठोर हो गया। और यह बड़े मजे की बात है, जिसको हम नैतिक कहते हैं वह बहुत कठोर हो गया है।
नैतिक आदमी बहुत ही कठोर होता है। नैतिक आदमी हद्द दर्जे की दुष्टता
कर सकता है। लेकिन वह अपनी दुष्टता को भी नैतिकता का जामा पहना देता है। वह अपनी नैतिकता के लिए भी, अपनी कठोरता के लिए भी नैतिकता का करार देगा, उसको एकदम कठोरता का जामा पहना देगा। और चूंकि वह खुद भी अपने प्रति कठोर होता है इसलिए दूसरे के प्रति कठोर होने का लाइसेंस उसे मिल जाता है। अगर किसी को सताना हो तो सबसे सरल तरकीब यह है कि पहले अपने को सताना शुरू करो। अगर दूसरों से उपवास करवाना हो, भूखों मरवाना हो तो पहले उपवास खुद शुरू करो। अगर खुद उपवास करने की हिम्मत जुटा ली तो फिर आप किसी से भी उपवास करवाने की हिम्मत जुटा सकते हैं। और जो न करें, वे पापी हो जाएंगे, वे निंदित हो जाएंगे। अगर दूसरों को भी सिर के बल खड़ा करवाने की तकलीफ देनी है तो पहले खुद अभ्यास करके सिर के बल खड़े हो जाओ। फिर कोई आदमी यह न कह सकेगा कि यह आदमी कठोर है। बल्कि कोई भी आदमी यही कहेगा कि मैं बड़ा पापी हूं इसलिए शीर्षासन नहीं कर पा रहा हूं। आप बड़े पुण्यात्मा हैं।
नैतिकता जिसे हम कहते रहे हैं अब तक, वह भी दूसरे को सताने की बड़ी गहरी व्यवस्था है। इसलिए एक घर में एक आदमी नैतिक हो जाए तो सारा घर परेशान हो जाता है। एक आदमी को नैतिकता का भूत चढ़ जाए तो घर भर की गर्दन दबा लेता है। इसलिए नैतिक आदमी बहुत गहरी हिंसा में उतर जाता है। लेकिन दिखाई नहीं पड़ती। और उसका सारा कारण कितना है? सारा कारण इतना है कि उस सारी मनुष्यता की कमजोरी के साथ कभी अपने को एक साथ रख कर नहीं देख पाता, अपने को अलग रख लेता है। सारी मनुष्यता को अलग तराजू पर तौल देता है। तो जो व्यक्ति जीवन के सत्य की खोज में निकला हो उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम सब एक साथ ही एक ही तराजू पर तौले जाएंगे। हमारा पुण्यात्मा और हमारा पापी सब एक साथ खड़े हुए हैं। और जो बहुत गहरा देखेगा उसको यह भी पता चलेगा कि हमारा पुण्यात्मा और हमारे पापी अलग-अलग भी नहीं हैं, भीतर से जुड़े हुए हैं। बल्कि उसे यह भी दिखाई पड़ेगा कि हमारा पुण्यात्मा भी इसलिए पुण्यात्मा मालूम पड़ता है कि कोई पापी होने के लिए तैयार हो गया है। अगर रावण रावण होने से इनकार कर दे तो राम की कहानी एकदम विदा हो जाए, वह कहीं भी न रह जाए। वह रावण रावण होने को तैयार है इसलिए राम की कहानी प्रकट हो पाती है। और अगर जीवन के अंत में कहीं कोई निर्णय होता होगा तो उस निर्णय में राम की कहानी रावण के बिना अर्थहीन मालूम पड़ेगी और राम को महात्मा बनाने में रावण का हाथ भी अनिवार्य रूप से स्वीकार करना पड़ेगा। और रावण ने कितनी ही बुराइयां की हों, कम से कम एक तो बहुत बड़ा काम किया है कि राम को जन्म दे

दिया है। और राम ने कितने ही अच्छे काम किए हों, एक बात तो पक्की है कि रावण को जन्म देने वाले वही हैं। इसलिए मैं यह कहता हूं कि महात्मा से महात्मा में पापी मिल जाएगा, पापी से पापी में महात्मा मिल जाएगा। ये चीजें टूटी हुई नहीं हैं, बहुत भीतर से जुड़ी हुई हैं।
आप एक नाटक देखने जाते हैं, तो आप देखते हैं कि नाटक में एक दुष्ट पात्र है, वह सता रहा है, सता रहा है, परेशान कर रहा है। वह चोरियां कर रहा है, वह स्त्रियों से बलात्कार कर रहा है, वह बच्चों की गर्दन दबा रहा है, वह बहुत दुष्ट है, वह सब तरह के उपद्रव कर रहा है। आपका मन उसके प्रति बड़े क्रोध से भर जाता है। फिर एक अच्छा पात्र है, एक साधु है, संत है, महात्मा है। वह उस बुरे आदमी से बचाने के लिए सेवा कर रहा है। आसन बना रहा है, सब उपाय कर रहा है। आपका मन उसके प्रति बड़े आदर से भर गया है। फिर नाटक समाप्त हो जाता है। वह जिसने पापी का काम किया, जिसने पुण्यात्मा का काम किया, वे दोनों गले में हाथ डाल कर पर्दे के पीछे से बाहर आते हैं। तब आप ऐसा नहीं कहते हैं उस बुरे आदमी से कि मारो इसको। तब आप उससे भी कहते कि बहुत अच्छा अभिनय किया। और तब आप उससे यह भी कहते हैं कि अगर तुम न होते तो महात्मा का पार्ट उभर न पाता। तुम थे तो उभरा। असल में कहानी के लेखक ने उस पापी को गहरे से गहरा पापी बनाने की कोशिश की है ताकि वह पुण्यात्मा उतने गहरे काले रंगों में सफेद और साफ और शुद्ध दिखाई पड़ सके। लेकिन वह पुण्यात्मा दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन नाटक के बाहर निकल कर हम जिसने पापी का काम किया है उसको सजा नहीं देते। लेकिन जिंदगी, जिंदगी में हम बड़े कठोर हैं। लेकिन कौन कहता है कि जिंदगी एक बड़ा नाटक नहीं है। और कौन कहता है कि जिंदगी के पर्दे के बाहर राम और रावण गले में हाथ डाल कर बैठ कर चाय नहीं पी रहे हैं। लेकिन हम बहुत थोड़ी दूर तक देखते हैं। असल में जिंदगी को हम पूरा नहीं समझ पाते क्योंकि जिंदगी को हम एक बड़े नाटक की तरह नहीं देख पाते हैं।
मेरे पास, मैं अभी बंबई से आया, तो एक फिल्म अभिनेता मिलने आया। उसने मुझसे कहा कि मुझे कुछ आपसे अभिनय के बाबत पूछना है, और आपसे कैसे पूछूं, लेकिन किसी ने मुझे कहा है कि आप शायद कोई काम की बात कह सकें। मैं ठीक अभिनय कैसे करूं? उसने कहा कि बड़ी अजीब सी बात आपसे पूछ रहा हूं, क्योंकि पता नहीं आप इसका उत्तर भी देंगे कि नहीं देंगे। मैंने उनसे कहा कि ठीक ही तुम पूछते हो। पूछना ही चाहिए। तो मैं तुम्हें एक सूत्र, मैंने उसे लिख कर दे दिया। उसे मैंने एक सूत्र लिख कर दे दिया कि जिन्हें ठीक से जीवन जीना हो, उन्हें जीवन इस भांति जीना चाहिए कि जैसे वह अभिनय हो। और जिन्हें ठीक से अभिनय करना हो, उन्हें अभिनय ऐसे करना चाहिए जैसे कि वह जीवन हो। अगर कोई व्यक्ति अभिनय ऐसे कर सके जैसे कि वह जीवन है, तो वह कुशल अभिनेता हो जाएगा। और अगर कोई व्यक्ति जीवन ऐसे जी सके कि वह अभिनय है तो वह सत्य का ज्ञाता हो जाएगा।
जीवन में प्रभु है, जीवन ही प्रभु है, यह हमें तभी पता चलेगा जब हम जीवन को भी एक अभिनय की तरह देख सकें। तब बुरे में भी उसके दर्शन हो जाएंगे, भले में भी उसके दर्शन हो जाएंगे। तब बुरे और भले से उसके दर्शन में बाधा नहीं पड़ेगी।
मैंने एक बहुत अदभुत कहानी सुनी है। मैंने सुना है कि एक भिक्षु ने जाकर एक सम्राट से कहा कि सभी में ब्रह्म का आवास है। उस संन्यासी ने सम्राट को कहाः सभी में ब्रह्म का आवास है। और सम्राट बहुत अदभुत था। उसने कहाः बातचीत तो हम न करेंगे, लेकिन परीक्षा कर लेना चाहेंगे। उस भिक्षु ने कहा कि बातचीत ही सब जगह होती है, ब्रह्म की तो चर्चा ही होती है। परीक्षा क्या होगी ब्रह्म की। सबमें ब्रह्म है, यह मैं तर्क से सिद्ध कर सकता हूं। उस राजा ने कहाः तर्क की हम चिंता नहीं करते। हम तो जीवन में प्रयोग करके देख लेना चाहते हैं। उस भिक्षु ने कहाः प्रयोग कर लें। तो राजा के पास पागल हाथी था। उसने पागल हाथी छुड़वा दिया उस भिक्षु के ऊपर। सारी राजधानी में लोग खड़े हो गए अपने-अपने महलों के ऊपर। बीच राजपथ खाली हो गया। पागल हाथी छूटा। वह भिक्षु भागा, वह चिल्लाया। पहले बहुत डरा। लेकिन सम्राट ने उससे कहाः अरे भूल गए! कहते थे, सभी में ब्रह्म है, तो पागल हाथी में ब्रह्म

नहीं है? तब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अपने ही तर्क कभी-कभी आदमी को बुरी तरह फंसा देते हैं। अब उसे बड़ी मुश्किल हुई।
उसने कहाः अब क्या करें? तो वह खड़ा हो गया आंख बंद करके, हाथ-पैर कंपे
जा रहे हैं। लेकिन वह खड़ा है, पागल हाथी ने आकर सूंड में उसे पकड़ लिया। महावत चिल्ला रहा है कि हट जा पागल, छोड़ अपने ज्ञान को, कहां की बातों में पड़ा है। क्यों तू जिंदगी गंवाता है, कह दे कि सबमें ब्रह्म नहीं है; कम से कम पागल हाथी में मैं नहीं मानता। बाकी सबमें होगा। एक क्षण तो उसने भागना चाहा। लेकिन राजा ने कहाः क्या भूल गया? वह अपनी छत के ऊपर से चिल्ला रहा है कि भूल गया? सारा गांव हंसेगा, कहां गया ब्रह्मज्ञान? तब वह फिर रुक गया। महावत ने बहुत कहा, कि इन बातों में मत पड़, जान चली जाएगी। महावत की सुनता था तो भागने की कोशिश भी करता था और राजा चिल्लाता तो फिर खड़ा हो जाता। आखिर उस हाथी ने उसको पकड़ कर फेंक दिया दूर, दस-बीस फीट दूर जाकर गिरा। हाथ-पैर टूट गए। उठा कर उसे ऊपर लाया गया। राजा उससे कहने लगा, क्या हुआ? उसने कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया। जब आपकी बात सुनाई पड़ती थी तब खड़ा हो जाता था, क्योंकि अहंकार को चोट लगती थी कि अपनी ही बात गलत हुई जा रही है। महावत जब कहता था कि भाग जा, तो सोचता था जान क्यों गंवानी है। ज्ञान के पीछे जान थोड़े ही गंवानी पड़ेगी। तो दोनों की दुविधा में पड़ गया था। राजा ने उससे कहाः लेकिन हाथी में तुझे ब्रह्म दिखाई पड़ा कि नहीं? उसने कहाः बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ा। दिखाई तो नहीं पड़ा, लेकिन देखने की मैंने कोशिश पूरी की, क्योंकि अगर बिल्कुल दिखाई न पड़ सके तब तो मैं भाग ही जाता। तो आंख बंद कर ली थी इसीलिए। आंख खुले में तो पागल हाथी दिखाई पड़ता था। आंख बंद कर ली थी, कि किसी तरह ब्रह्म थोड़ी देर को भी दिखाई पड़ जाए फिर जो हो, हो। महावत ने कहा, लेकिन तुझे मुझमें ब्रह्म दिखाई न पड़ा? कि मैं जो चिल्ला रहा था कि हट जा? अगर पागल हाथी में ब्रह्म था तो मुझमें न था? और छोड़ मेरी बात। हाथी की भी छोड़, राजा की भी छोड़। तेरे भीतर भी तो ब्रह्म था, वह क्या कह रहा था? तो कम से कम उसकी तो तुम्हें सुन लेनी थी? उस आदमी ने कहाः तब तो बड़ी भूल हो गई। मेरा ब्रह्म तो पूरे वक्त कह रहा था कि भाग, वह पूरे समय कह रहा था कि भाग।
जिंदगी बहुत जटिल है। उस पागल हाथी में भी ब्रह्म है, लेकिन वह पागल ब्रह्म है, यह जानना। नहीं तो पागल ब्रह्म से बहुत मुसीबत हो जाएगी। चोर में ब्रह्म है, लेकिन वह चोर ब्रह्म है, यह समझना। और रावण में भी ब्रह्म है, लेकिन वह रावण का पार्ट अदा कर रहा है, यह भी समझना। जीवन अगर एक अभिनय दिखाई पड़े तो हम बुरे में भी ब्रह्म देख पाएंगे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम बुरे की पूजा करने लग जाएं। इसका यह मतलब भी नहीं है कि हम रावण के भक्त हो जाएं और रावण जैसा जीने लगेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है कि बुरा हमारे लिए भला और बुरे में कोई भेद न रह जाएगा। इसका केवल इतना मतलब है कि जिंदगी तब हमें एक बोझ न मालूम पड़ेगी, गंभीरता न मालूम पड़ेगी। जिंदगी एक खेल और एक लीला हो जाएगी।
और जिसे जीवन में ही प्रभु को देखना हो उसे जीवन को लीला बना लेना जरूरी है। सीरियस और गंभीर लोग जीवन में परमात्मा को कभी नहीं देख सकते। लेकिन हमारा अनुभव उलटा है। हम आमतौर से ऐसा ही समझते हैं कि जितनी गंभीर सूरतें हैं वे सभी भगवान को उपलब्ध हो गई हैं। हम यह तो सोच ही नहीं सकते कि संत भी और हंस सकते हैं। हम सोच ही नहीं सकते। असल में संत होने के लिए रोती हुई सूरत भी मिलना बहुत जरूरी चीज है। हम कल्पना ही नहीं कर सकते। अगर महावीर कहीं रास्ते पर पड़े हुए खिलखिलाते मिल जाएं तो महावीर के भक्त एकदम भाग जाएंगे वहां से कि कोई गलत आदमी है, महावीर हो ही नहीं सकते। महावीर और खिलखिला कर हंसते हों रास्ते पर? असंभव है! बुद्ध किसी होटल में मिल जाएं। हम कल्पना नहीं कर सकेंगे। हम विश्वास नहीं कर सकेंगे कि बुद्धहो सकते हैं।े
हम जिंदगी को ऐसी कठोरता से लिए हैं कि जिंदगी का हलकापन, वेटलेसनेस नहीं। जिंदगी एक लीला एक अभिनय नहीं। जिंदगी एक बड़ी गंभीरता की बात है। और गंभीरता एक रोग है। और गंभीरता एक बीमारी है। धार्मिक आदमी गंभीर नहीं है, धार्मिक आदमी इतना हल्का है, इतना हलका-फुलका है। इतना प्रसन्न, इतना

प्रसन्न, इतना प्रफुल्लित है कि जीवन के सब रूपों के साथ नाच सकता है, हंस सकता है, उठ सकता है, बैठ सकता है। लेकिन अब तक की धार्मिक गंभीरता की ही परंपरा है और इसलिए मैं कहता हूं कि इस धार्मिक परंपरा की वजह से सिर्फ रोते हुए, उदास लोग ही धार्मिक हो सके हैं। हंसते हुए, प्रसन्न लोगों को धार्मिक होने का मौका ही न रहा। वे तो निंदित हो गए। वे तो कभी धार्मिक हो ही नहीं सकते।
यही वजह है कि मरने के करीब पहुंचते-पहुंचते लोग मंदिरों और मस्जिदों में जाना शुरू करते हैं क्योंकि तब तक हंसी व्यतीत हो गई होती है। इसलिए मंदिरों और मस्जिदों में वृद्ध और वृद्धाओं के सिवाय कोई दिखाई नहीं पड़ता। जवान वहां नहीं दिखाई पड़ते, बच्चे वहां नहीं दिखाई पड़ते। बल्कि बच्चों को भी अगर ले जाते हैं मां-बाप तो मंदिरों में गंभीर बना कर बिठा देते हैं कि बिल्कुल गंभीर बन कर बैठ जाओ। यह मंदिर है। तो बच्चों को भी बूढ़ा बना कर बिठाल सकें तो ही मंदिरों में उनका प्रवेश है। मंदिर बड़े गंभीर होते हैं। गंभीरता रुग्ण है। प्रसन्नता, जीवन की सहजता, तो ही हम जीवन में परमात्मा को देख सकेंगे। गंभीर लोग न देख सकेंगे। गंभीर लोग इतने हलके ही नहीं कि उतनी बड़ी उड़ान भर सकें; पत्थर की तरह वजनी हो जाते हैं।
तो मेरे देखे फूल में गंभीरता नहीं है और न हवाओं में गंभीरता है और न वृक्षों में। और न पक्षियों की आवाजों में, और न आकाश के तारों में, और न सूरज में। अगर हम सारे जगत में खोजने चले जाएं तो सिर्फ आदमी में कुछ आदमी मिल जाएंगे जो गंभीर और उदास और दुखी हैं और भारी हैं। लेकिन जगत में और विश्व में कहीं भी भारीपन नहीं मिलेगा। सारा जगत एक नृत्य में डूबा हुआ है, एक प्रफुल्लता में डूबा हुआ है, एक रस में डूबा हुआ है।
यह भी सूत्र मैं आपको कहना चाहता हूं कि रस में विभोर हो सकेंगे, हलके होकर जीवन के सब रूपों में, तोशायद प्रभु का दर्शन हो सके सब तरफ। क्योंकि प्रभु तो बहुत आनंद-रस में विभोर होकर नाच रहा है।
और हमने तय कर लिया है कि सिर्फ गंभीर भगवान से मिलेंगे। और वह कहीं
है नहीं। कहीं कोई गंभीर भगवान नहीं है। लेकिन हमने तय कर लिया है कि गंभीर भगवान की खोज करनी है। और शायद इसीलिए, हमने असली भगवान की फिकर छोड़ दी है, और पत्थर की मूर्तियां मंदिरों में बना कर रख ली हैं। क्योंकि पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा गंभीर और वजनी क्या हो सकता है? मरे हुए पत्थर की मूर्तियों से ज्यादा और क्या हो सकता है--डेड? जिसमें जीवन का कोई अंकुर नहीं निकलता; जिसमें कोई फूल नहीं खिलता, जिसमें कभी कोई हेर-फेर, कोई बदल नहीं होती, बिल्कुल मरा हुआ पत्थर पड़ा हुआ है। तो जिंदा पत्थर को भी पूजते तो भी ठीक था। उसमें भी कुछ भगवान हो सकता है, जिंदा से भी काम नहीं चलता। पहले खीला-हथौड़ी लेकर उसको मारना पड़ता है। जब उसकी सब जिंदगी काट डालते हैं और अपने हिसाब से ढाल लेते हैं... वह तो भगवान शायद इसीलिए बचा फिरता है आदमियों से कि अगर कहीं मिल जाए तो पता नहीं वह छैनी-हथौड़ी लेकर उसको काट-पीट डालें और किस शक्ल में ढाल कर उसको मंदिर में बिठाएं। क्योंकि हम उसको वैसा का वैसा कभी स्वीकार न करेंगे। क्योंकि निश्चित वह हंसता होगा। अगर वह न हंसता होगा तो हंसी कहां से आती होगी? अगर वह नहीं हंसता है तो हंसी कहां से आती है? अगर वह गीत नहीं गाता है तो गीत कहां से जन्मते हैं? अगर वह प्रेम नहीं करता है तो प्रेम की इतनी बड़ी धारा, इतनी बड़ी गंगा कैसे बहती है? अगर फूलों में उसको कोई उत्सुकता नहीं तो फूल खिलते क्यों हैं? वह तो बहुत आमोद में, वह तो बहुत रस में बंद मालूम होता है। उसकी तो घड़ी-घड़ी नृत्य और नाच में डूबी हुई मालूम पड़ती है। हमें अगर मिल जाए तो पहले तो हमें उसका नाच छीनना पड़े, हाथ-पैर बांध देने पड़ें। लेकिन जिंदा भगवान भरोसे का नहीं हो सकता। हम कहीं बिठाएं, वह कहीं चला जाए। तो हम पत्थर के ही बना लेते हैं, वह बड़ा सुविधापूर्ण है। हम जहां बिठा देते हैं, फिर वहीं बैठा रहता है। फिर कोई फर्क नहीं होता। रोज जाते हैं, वहीं मिल जाता है जहां बिठाया था। कभी ऐसा नहीं होता है कि यहां-वहां हो जाए। फिर कभी गड़बड़ भी नहीं करता। हमने जैसा मान रखा है वैसा ही रहता है। उससे अन्यथा कभी नहीं होता। पत्थर के भगवान के प्रति हम प्रेडिक्ट कर

सकते हैं, हम घोषणा कर सकते हैं कि वह ऐसा ही रहेगा। असली भगवान के साथ कुछ भरोसा नहीं। कि हम उसे एक मंदिर में गंभीर खड़ा करके लौटें और सुबह जब जाएं तब वह नाच रहा हो। अनप्रेडिक्टेबल होगा। असल में सभी जिंदा चीजें अनप्रेडिक्टेबल हैं; जिंदा चीजों के बाबत घोषणा नहीं हो सकती है, भविष्यवाणी नहीं हो सकती है। इसलिए मुर्दों के सिवाय ज्योतिषी किसी के संबंध में कुछ नहीं बता सकता। जो बिल्कुल मरे-मराए लोग हैं, उन्हीं के संबंध में ज्योतिषी कुछ बता सकता है। जिंदा आदमी के बाबत ज्योतिष कुछ नहीं बता सकता। जिंदा आदमी हाथ की सब रेखाएं गलत कर दे सकता है।
मैंने सुना है कि बुद्ध एक गांव के पास से गुजरे थे, एक नदी के किनारे। दोपहर थी भरी, धूप थी तेज। नदी की रेत पर उनके पैर के चिह्न बन गए। पीछे काशी से बारह वर्ष ज्योतिष का अध्ययन करके एक पंडित लौटता था। बड़ी किताबें, ज्योतिष के ग्रंथ साथ में बांधे हुए था। पंडितों के पास सिवाय ग्रंथों के और कुछ है भी नहीं जीवन में। पंडित बड़े दीन हैं कि उनके पास कागज की किताबों के सिवाय कुछ भी नहीं है। अपना बोझ लिए चला आता था। बारह साल मेहनत की थी ज्योतिष में। असल में लोग फिजूल की चीजों में इतनी मेहनत करते हैं कि अगर ठीक चीजों में उतनी मेहनत करें तो कभी के परम को उपलब्ध हो जाएं। लेकिन बारह साल ज्योतिष सीखने में गंवाए।
अब वह लौट रहा था। वहां देखा, पैर के चिह्न पड़े रेत पर, चौंक गया। क्योंकि पैरों में वह चिह्न था जिसको ज्योतिष के शास्त्र कहते हैं कि इस आदमी को चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए। और भरी दोपहरी में, इस छोटे से गांव में, साधारण सी नदी की रेत पर चक्रवर्ती राजा नंगे पैर चलेगा? उसने कहा कि कुछ गड़बड़ हो गई है। चक्रवर्ती और एक साधारण से गांव में? और इस गंदी सी नदी की रेत में? और नंगे पैर, और भरी दोपहरी में? तो अगर चक्रवर्ती ऐसा घूम रहा हो, तो इन किताबों को नदी में डुबा कर, बारह साल व्यर्थ गए, सोचकर घर लौट जाना चाहता था। पर उसने सोचा कि जरा खोज तो लें कि चक्रवर्ती आस-पास ही में हो कहीं। क्योंकि पैर के निशान इतने ताजे हैं कि अभी-अभी ही गुजरा होगा। वह पैरों के पीछे-पीछे चल कर गया। एक वृक्ष की छाया में बुद्ध विश्राम करते थे। आंख बंद थी, पैर थे टिके, तो उसने पैरों के पास जाकर देखा यही आदमी, बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पास में भिक्षा का पात्र रखा है, चक्रवर्ती होने का सवाल नहीं। देखा भिक्षु है, फटे कपड़े पहने हुए है। लेकिन चेहरा तो चक्रवर्ती का ही मालूम पड़ता है। जगाया और कहा कि मुश्किल में डाल दिया है। बारह साल की मेहनत पानी हुई चली जाती है? आप हैं कौन, यहां क्या कर रहे हैं? आपके पैर के चिह्न तो कहते हैं, चक्रवर्ती सम्राट हो। तो इस भरी दोपहरी में, इस साधारण से गरीब गांव की नदी की रेत पर यहां किसलिए आए हो? साथी कहां हैं, संगी कहां हैं, दरबारी कहां हैं? अकेले इस वृक्ष के नीचे क्या कर रहे हो? फटे-पुराने कपड़े क्यों पहने हो? यह क्या नाटक है? यह भिक्षा का पात्र क्यों लिए हो?
बुद्ध ने कहाः मैं तो भिक्षु ही हूं। उसने कहाः फिर मेरी किताबों का क्या होगा? नदी में फेंक दूं? बारह साल मेहनत बेकार गई? बुद्ध ने कहाः नहीं, किताबें काम पड़ेंगी। किताबें ले जाओ। बहुत मरे हुए लोग हैं जिनके चिह्न मिलाओगे तो मिल जाएंगे। लेकिन जिंदा आदमी पर रेखाएं नहीं बनतीं। जिंदगी पर कोई बंधन नहीं है। जिंदगी निर्बंध है, जिंदगी मुक्त है। इसीलिए प्रेडिक्शन नहीं हो पाता, भविष्यवाणी नहीं हो पाती।
जितना जीवंत व्यक्ति होगा, उतना उसके कल के बाबत कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कल वह क्या कहेगा, क्या करेगा, कैसे उठेगा, कैसे जीएगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, जितना मरा हुआ आदमी, कल के बाबत कहा जा सकता है कि कल वह सुबह उठ कर यह करेगा, यह बोलेगा। पत्नी से लड़ेगा, बाजार जाएगा, दुकान चलाएगा, सांझ को लौटेगा, बेटे को डांटेगा कि पढ़ाई नहीं की, परीक्षा ठीक से नहीं दी। रात झंझट और कुछ करेगा। रात सो जाएगा। सुबह फिर उठेगा, सब बताया जा सकता है।
इसलिए हमने पत्थर के परमात्मा बना कर रखे हुए हैं। वे असली परमात्मा
से बचने के लिए हैं। क्योंकि असली परमात्मा के बाबत कुछ भी भरोसा नहीं है, रिलायबल नहीं है। असली परमात्मा भरोसे योग्य नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि जब सभी में परमात्मा है, तो फिर मंदिर में मूर्ति की पूजा करें, तो आपको एतराज क्या है?

मैंने कहा, सभी में परमात्मा! उनको मंदिर की मूर्ति फौरन याद आ गई। हम उसकी पूजा करें, तो एतराज क्या? अगर सभी में परमात्मा है, यह समझ में आ गया, तो मंदिर की मूर्ति का सवाल ही नहीं रह जाता। मंदिर की मूर्ति का सवाल तभी तक है जब तक सभी में परमात्मा नहीं है तब तक मंदिर की मूर्ति में परमात्मा देखने की चेष्टा चलती है। जिस दिन सभी में दिख गया तो फिर कौन मंदिर की मूर्ति है? और कौन मंदिर के बाहर है? कौन मंदिर की मूर्ति है और कौन मंदिर की मूर्ति नहीं है? फिर कैसे पता चलेगा। फिर कैसे पक्का करोगे कि दरवाजे पर जो भिखारी बैठा है, वह मंदिर की मूर्ति नहीं है? और मंदिर के भीतर जो पत्थर रखा है, वह भगवान है। नहीं, फिर उपाय नहीं है। लेकिन मंदिर की मूर्ति सब्स्टीट्यूट है इसलिए खतरनाक है। मैं कहता हूं, मत करना मंदिर की मूर्ति की पूजा। इसलिए नहीं कि उसमें परमात्मा नहीं है। परमात्मा तो सब जगह है। लेकिन मंदिर की मूर्ति उन्होंने ईजाद की है जो सब तरफ से परमात्मा से बचना चाहते हैं। उन्होंने इसको ईजाद किया है।
अधार्मिक लोगों ने मंदिर की मूर्ति ईजाद की है। परमात्मा के शत्रुओं
ने मंदिर की मूर्ति ईजाद की है ताकि जीवंत परमात्मा से बचा जा सके। और एक मरे हुए, ढांचे में ढले हुए, अपने ही हाथ से बनाए हुए भगवान के सामने हाथ जोड़ कर घुटने टेक कर बैठा जा सके। अगर दुनिया में कहीं पृथ्वी के बाहर और भी लोग हैं और हमें देखते होंगे अपनी ही ढाली गई, अपनी ही बनाई गई मूर्तियों के सामने घुटने टेके हुए तो बहुत हंसते होंगे कि पृथ्वी के आदमी पागल मालूम होते हैं।
छोटे बच्चों पर हम नाराज होते हैं और छोटे बच्चों को हम नासमझ कहते हैं, क्योंकि वे गुड्डे-गुड्डियों के विवाह रचाते हैं, और जब हम रामचंद्रजी की बरात निकालते हैं, हम बड़े बुद्धिमान हो जाते हैं। हम जरा बड़े गुड्डा-गुड्डी बनाते हैं तो हम बहुत बुद्धिमान हैं, हम बचकाने नहीं हैं और छोटे बच्चे, बचकाने हैं! वे बच्चे हैं, इसलिए गुड्डे-गुड्डी का विवाह रचा रहे हैं। और छोटी लड़कियां गुड्डियों को रख कर सुला रही हैं, बच्चे समझ कर। हम उन पर हंसते हैं, कि बच्चे हैं, थोड़े दिन में बड़े हो जाएंगे फिर छोड़ देंगे ये नासमझियां। लेकिन, बड़े बच्चे जो हैं, वे भी छोटे नहीं हैं, उनसे बड़ी आशा नहीं बंधती। बड़े बच्चे बड़ी गुड्डियां बनाएंगे, छोटे बच्चे छोटी गुड्डियां बनाएंगे। छोटे बच्चों की गुड्डियां बड़ी सस्ती हैं, बड़े बच्चों की गुड्डियां बहुत मंहगी हैं। इतनी मंहगी हैं कि आदमी मर जाते हैं गुड्डियों के पीछे। रामचंद्र जी का हाथ कोई तोड़ दे, फिर दस-पचास मुसलमानों को मारना पड़ेगा। मस्जिद की दीवाल कोई गिरा दे तो सौ-पचास हिंदुओं को मारना पड़े। बड़ी महंगी ईंटें हैं इन मंदिरों और मस्जिदों की। इनमें खून ही खून लगा है आदमी का। और ये मूर्तियां, जिनको आप भगवान कह रहे हैं, ये भी बड़ी मंहगी हैं। इनके नीचे कब्रें बिछी हैं आदमी की। लाशें पड़ी हैं आदमी की, और उनकी पूजा चली जा रही है।
मैं नहीं कहता हूं कि वहां भगवान नहीं है। क्योंकि जब भगवान सभी में
है तो मूर्ति भर को छोड़ कर कैसे बचेगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मेरी बात ठीक समझ लेना। जिन्होंने मूर्ति ईजाद की है उन्होंने इसीलिए की है कि ताकि वह सबमें न दिखाई पड़े। इधर मरे-मराए को पकड़ा दें, इसको हम पूजते रहें। फिर और सुविधा है। मरे-मराए भगवान का ही पुजारी हो सकता है। जिंदा भगवान का कोई पुजारी नहीं हो सकता। जिंदा भगवान से सीधा संबंध करना होगा। मरे हुए भगवान में बीच में एक एजेंट होगा। क्योंकि मरे भगवान खुद तो बोल नहीं सकते। एजेंट से बोलेंगे। मरे भगवान खुद तो कुछ कर नहीं सकते। भोग लगेगा मरे भगवान को, भोग लेगा पुजारी। तो मरा भगवान पुजारी को बीच में खड़े होने का अवसर देता है इसलिए पुजारी मरे भगवान में बहुत उत्सुक है, जीवित भगवान में उसकी कोई उत्सुकता नहीं है। बल्कि मरे भगवान के लिए जीवित भगवान की वे हत्या करवा सकते हैं, उसकी उन्हें कोई तकलीफ नहीं है।

सारे हिंदू-मुस्लिम, सारे ईसाई, सारे जैन सारी दुनिया में ऐसी गंवारियां, ऐसी बेवकूफियां कर रहे हैं। सोच कर हैरानी होती है कि ये धार्मिक लोग हैं? और जो यह आदमी को छुरा भोंक दें, इनको जब आदमी में भगवान नहीं दिखता, इतना जीवन, उनको पत्थर की मूर्ति में दिखता होगा, यह विश्वास नहीं आ रहा है। जिनको आदमी में नहीं दिखता, वे कहते हैं आदमी मुसलमान है। आदमी में भगवान नहीं दिखता है। आदमी हिंदू है। पत्थर में उन्हें भगवान दिख जाता है। पत्थर में भगवान दिख जाता है। अब हो सकता है किसी मुसलमान कारीगर ने ही भगवान खोदा हो और अक्सर ऐसा ही होता है कि सब कारीगर अधिकतर मुसलमान हैं। जो पत्थर खोदते हैं। वह मुसलमान कारीगर ने पत्थर खोदा, वह भगवान हो गया। और मुसलमान की छाती पर छुरे भोंक सकते हैं और आग लगा सकते हैं। धर्म के नाम पर जो अब तक चला है उसे बचाने की अब आगे जरूरत नहीं है। उसके लिए बहाने मत खोजें।
वह जो पूछा है मित्र ने, कि जब सभी में भगवान है तब तो फिर मूर्ति में
भी भगवान हो गया। तो अगर हम मूर्ति की पूजा करें, आपको एतराज क्या है? बहुत एतराज है। एतराज बहुत है। और एतराज यही है कि जब तक वह मूर्ति पकड़ी रहेगी तब तक वह सबमें दिखाई नहीं पड़ेगा। और एक दफे सबमें दिख जाने दें, फिर मूर्ति में भी होगा। लेकिन पूजा की क्या जरूरत रह जाएगी। कौन पूजेगा, किसको पूजेगा? जब सबमें ही दिखाई पड़ जाएगा।
एकनाथ लौटते थे काशी से और सारे मित्र साथ थे। तो पानी लेकर जा रहे हैं रामेश्वरम चढ़ाने। बीच में एक मरुस्थल पड़ा और एक प्यासा गधा पड़ा था। गधे में और भगवान हो सकते हैं? कभी नहीं हो सकते। गधे में कहीं भगवान हो सकता है?
अभी पहले किताबों में हुआ करता था ग गणेश जी का, तो कुछ किताबों में लोगों ने लिख दिया, ग गधे का। तो धार्मिक लोगों ने बड़ा विरोध किया कि यह तो बड़ी गलत बात है। ग गणेश जी का ही होना चाहिए, ग गधे का कैसे हो सकता है? गधे में कहीं भगवान हो सकते हैं? अब मजा यह है कि गणेश जी बिल्कुल मरे हुए हैं और गधा बहुत जिंदा है। जब मरे-मराए गणेश जी में भी हो सकते हैं तो गधे में क्यों नहीं हो सकते?
एकनाथ की मित्र-मंडली जा रही है। वह गधा प्यासा तड़प रहा है। रेगिस्तान है, पास पानी नहीं है। लेकिन वह भगवान के पुजारी काशी से पानी लेकर रामेश्वरम चले जा रहे हैं। बड़े भक्त हैं, पक्के भक्त मालूम होते हैं। इतनी लंबी यात्रा कर रहे हैं। नासमझियों में कष्ट उठाने से कोई भक्त नहीं हो जाता। सिर्फ बुद्धिहीन सिद्ध होता है। अब पहला तो यही पागलपन है कि काशी का पानी काशी में ही ठीक है, रामेश्वरम का रामेश्वरम में। तुम यह परेशानी क्यों कर रहे हो? कि तुम काशी से भर कर और रामेश्वरम ले जा रहे हो। और जो भगवान वहां पानी गिरा रहा है वह रामेश्वरम में भी काफी गिरा रहा है, वहां कोई कमी नहीं है। और तुम्हारे एक तंबू से वहां कुछ बढ़ती हो जाने वाली नहीं है। लेकिन बुद्धिहीनता धर्म के नाम से चल रही है। और वह बड़ा कष्ट उठा रहे हैं, गांव-गांव में उनका स्वागत हो रहा है, क्योंकि उन्हीं तरह के बुद्धिहीन वहां भी इकट्ठे हैं। वे कह रहे हैं, ये बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं। ये तीर्थयात्रा से लौट रहे हैं, ये तीर्थयात्रा पर जा रहे हैं। कौन सी तीर्थयात्रा हो गई? यह पड़ा है गधा और प्यास से चिल्ला रहा है। एकनाथ भी उस मंडली में हैं। उन्होंने अपना वह जो कमंडल भर कर लाए थे वह गधे को पिला दिया। सारी मंडली टूट पड़ी कि तुम बड़े अधार्मिक हो, पागल हो गए हो? यह तो रामेश्वरम के भगवान के लिए लाए थे। एकनाथ ने कहाः रामेश्वरम के भगवान पता नहीं प्यासे होंगे या नहीं। और होंगे तो वहां हम और पानी भर लेंगे। लेकिन ये भगवान बहुत प्यासे हैं। एकनाथ को मंडली ने अलग किया कि हटो तुम अलग, नास्तिक मालूम होते हो। धार्मिक नहीं मालूम होते हो। गधे को पानी पिलाते हो। गधे में भगवान है?
यह जो जीवन हमारे चारों तरफ फैला है उसमें हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं
और एक पत्थर की मूर्ति हम बाजार से खरीद कर लाते हैं, उसमें हमें दिखाई पड़ जाते हैं? संभव नहीं दिखता है। गणित उलटा मालूम होता है। हां, जिस दिन

सबमें दिख जाएंगे, उस दिन उस पत्थर में भी दिख जाएंगे। लेकिन सबमें तो नहीं दिखाई पड़ रहे हैं।
वे मेरे मित्र पूछते हैं कि सबमें आप मानते हैं?
मैं मानता नहीं हूं। मानने की जरूरत ही नहीं है। सबमें है, इसको देखने
की जरूरत है, मानने की कोई जरूरत नहीं है।
यह अंतिम बात और। एक सूत्र आपसे कहूं, कि जो मान लेगा कि सबमें है, वह कभी न जान पाएगा। मान लेना बाधा बनेगी, मान लेने का कोई मतलब नहीं है। मानने की क्या जरूरत है। अगर दिखते हों तो ठीक, न दिखते हों तो ठीक। कम से कम सच्चाई की घोषणा तो करनी चाहिए कि मुझे नहीं दिखते।
एक फकीर हुआ सरमद। इस्लाम में पवित्र मंत्र की तरह यह बात कही जाती है, एक ही अल्लाह है, और कोई अल्लाह नहीं है। एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं। लेकिन वह जो सरमद था वह आधा ही हिस्सा कहता था। वह पूरा नहीं कहता था। वह कहता था--कोई ईश्वर नहीं है। पहला हिस्सा है, एक ही ईश्वर है। उसके सिवाय कोई ईश्वर नहीं है। वह सरमद आखिरी का टुकड़ा ही कहता था। वह कहता था, कोई ईश्वर नहीं। उसको औरंगजेब ने बुलवाया और उससे कहा कि मैंने सुना है तुम बड़ी अधार्मिक बातें कहते हो। हमने सुना है, तुम कहते हो, कोई ईश्वर नहीं है?
उसने कहाः अभी हम इतना ही जान पाए। हम जितना जान पाए हैं उतना ही कहेंगे, उससे ज्यादा हम कैसे कहें? हम कैसे कहें कि एक ही ईश्वर है। हमने देखा ही नहीं, हमने जाना ही नहीं। अभी तो हम इतना ही जान पाए हैं कि कोई ईश्वर नहीं है। बहुत खोजा, कहीं ईश्वर नहीं दिखाई पड़ा। औरंगजेब ने कहाः यह नास्तिक है, इसकी हत्या कर देनी चाहिए। औरंगजेब ने कहाः इतना कह देने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है। उसने कहाः बहुत बिगड़ता है। क्योंकि भगवान की खोज में निकले हैं हम, और अगर झूठ से शुरुआत की तो सत्य तक कैसे पहुंचेंगे? खोज में निकला हूं कि है कहीं ईश्वर? अभी इतना ही जान पाया कि कहीं नहीं है। जिस दिन जान लूंगा कि है, उस दिन कहूंगा। उसके पहले नहीं कहूंगा। आखिर बहुत समझाने-बुझाने का कोई परिणाम नहीं हुआ। वह राजी न हुआ यह बात कहने को। उसने कहा, झूठ मैं कैसे कहूं? मुझे दिखे, तुम्हें दिखता होगा, तुम कहते हो। मुझे नहीं दिख रहा है।
आखिर उसकी गर्दन काट डाली गई। बड़ी अदभुत कहानी है, बहुत अदभुत कहानी है। पता नहीं कैसे घटी। गर्दन उसकी काटी गई। जैसे ही उसकी गर्दन गिरी, कहते हैं और कोई एक लाख आदमी इकट्ठे थे देखने को। आंखों के गवाह इतने मौजूद थे। जैसे ही उसकी गर्दन कटी, उसने कहाः एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं। तो लोगों ने कहाः पागल! पहले क्यों नहीं कह दिया? तो उसने कहाः तब तक नहीं दिखाई पड़ा था तो कैसे कहता? अब दिख गया, तो कहता हूं।
कटी हुई गर्दन ने पता नहीं कहा कि नहीं, लेकिन कटी हुई गर्दन से यह आवाज है। सरमद ने कहाः अब दिखाई पड़ गया। उसकी गर्दन लुढ़कती है मस्जिद पर, जिस पर वह काटा गया है। सीढ़ियों पर लहू के निशान और उसकी गर्दन लुढ़कती आती है। और भीड़ उससे पूछती है, कि अब क्यों दिख गया? उसने कहाः तब तक सरमद था, इसलिए दिखाई नहीं पड़ा। अब सरमद कट गया तो दिखाई पड़ गया। और मैं कहता हूं, एक ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं।
यह आपसे मैं नहीं कहता कि आप मान लें कि ईश्वर सबमें है, जीवन ईश्वर है। यह मैं नहीं कहता हूं कि आप मान लें। आप मान लेंगे तोझूठ में पड़ जाएंगे। ऐसे झूठ में कभी मत पड़ना। ऐसे तोझूठ में काफी पड़े हुए हैं। ईश्वर तक के संबंध में हमने झूठ ईजाद कर लिए हैं। जो मुझे पता है, उससे ज्यादा कहीं नहीं है, उससे ज्यादा मानने की कोई जरूरत ही नहीं है। कौन कहता है कि उससे ज्यादा मानें? अभी इतना ही मानें कि मुझे पता नहीं है, अच्छा है। इतनी सच्चाई काफी है। इतनी सच्चाई यात्रा के लिए काफी पाथेय है, इसको लेकर यात्रा हो जाएगी। इतना बहुत है। इतनी ईमानदारी काफी है कि मुझे पता नहीं; मुझे तो वृक्ष दिखाई पड़ता है, मुझे ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता। नहीं दिखाई पड़ता है तो बहुत अच्छा है, वृक्ष भी क्या खराब है। वृक्ष भी बहुत अच्छा है।
न दिखाई पड़े ईश्वर तो वृक्ष को ही देखें अभी कुछ दिन। जल्दी क्या है।

लेकिन मैं कहता हूं, कि वृक्ष को गहरे देखेंगे तो ईश्वर दिखाई पड़ जाएगा। लेकिन और गहरे, और गहरे, और गहरे। लेकिन सच्चाई गहरे में जा सकती है, झूठ गहरे में नहीं जा सकता है। सब विश्वास झूठे हैं; सब बिलीफ झूठी हैं; सब मान्यताएं झूठी हैं। सब पकड़े हुए शास्त्र, चूंकि हमारे अनुभव से नहीं आते हैं; हमारे लिए बिल्कुल झूठे हैं। और उनको पकड़ कर हम बैठे हैं इसलिए सत्य की कोई यात्रा नहीं हो पाती है।
मैं तो कहता हूं, कि जिसे आस्तिक होना हो उसे नास्तिक होना ही पड़ता है। जिसे परम आस्तिक होना हो उसे परम नास्तिकता तक जाना पड़ता है। जिसे "हां" भरना हो किसी दिन पूरे प्राणों से, उसे पूरे प्राणों से एक दिन "नहीं" भी कहनी पड़ती है। लेकिन हम "हां" कहने में ऐसे लोलुप हैं कि नहीं कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते और "हां" कह देते हैं। हमारी "हां" नपुंसक होती है। जो आदमी "न" नहीं कह सकता उसकी "हां" का कोई मतलब नहीं है। इसलिए जो आदमी "हां" कहने की हिम्मत जुटाना चाहता हो उसे "न" कहने की हिम्मत पहले जुटा लेनी चाहिए। लेकिन इतना पक्का है कि हमारी "न" से वह "न" नहीं हो जाता। वह है, तो हमारी "न" भी टूट जाएगी और नहीं है तो ठीक है हमारी "न" ठीक रहेगी। इतना मैं कहता हूं कि "न" कहने वाला अगर हिम्मत से "न" कहे तो वह परमात्मा की आंखों में एक जगह बना लेता है। नास्तिक की एक जगह है, झूठे आस्तिक की कोई भी जगह नहीं है। जो आदमी कहता है, मुझे नहीं दिखाई पड़ता, वह भगवान भी सामने खड़ा हो जाए तो वह कहेगा, अभी मुझे दिखाई नहीं पड़ता है तो मैं कैसे हां कह दूं।
भगवान झूठ के लिए किसी को मजबूर कर सकता है? नहीं, नास्तिकों की उसके हृदय में एक जगह है, क्योंकि कम से कम वे सच्चे तो हैं। इतना तो कहते हैं-- नहीं मालूम पड़ता। लेकिन जो कहता है--हमें मालूम नहीं पड़ता, वह खोज पर निकल जाता है। क्योंकि न मालूम पड़ने पर कोई भी कभी रुक नहीं सकता। "न" पर कभी कोई ठहर सकता है? "न" कभी मंजिल नहीं हो सकती। मंजिल तो "हां" ही हो सकती है। "न" में तो पीड़ा बनी ही रहेगी। तो और खोजो, पता नहीं और आगे हो। और आगे हो, और आगे हो। खोजते-खोजते "न" गिर जाती है और "हां" आ जाती है। लेकिन यह मान्यता की बात नहीं है, यह जानने की ही जरूरत है। और जानने का उपाय है, जानने का मार्ग है। उसे ही मैं ध्यान कहता हूं।
कल सुबह हम उस मार्ग पर फिर प्रवेश करेंगे कि हम उसे कैसे जान सकते हैं। तो सुबह साढ़े आठ बजे जो मित्र आते हैं, आ जाएं।

आज की रात की बात पूरी हुई।
सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं।

जीवन ही है प्रभु
छठवां प्रवचन

ध्यान अविरोध है

मेरे प्रिय आत्मन्!
ध्यान की आधारशिला अक्रिया है, क्रिया नहीं है। लेकिन शब्द "ध्यान"
से लगता है कि कोई क्रिया करनी होगी। ध्यान से लगता है कुछ करना होगा। जब कि जब तक हम कुछ करते हैं, तब तक ध्यान में न हो सकेंगे। जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं तब जो होता है, वही ध्यान है। ध्यान हमारा न करना है। लेकिन मनुष्य-जाति को एक बड़ा गहरा भ्रम है कि हम कुछ करेंगे तो ही होगा। हम कुछ न करेंगे तो कुछ न होगा।
बीज को कुछ करना नहीं पड़ता टूटने के लिए, और बीज को कुछ करना नहीं पड़ता अंकुर बनने के लिए, और बीज को कुछ करना नहीं पड़ता फूल बन जाने के लिए; होता है। हम भी बच्चे से जवान हो जाते हैं, कुछ करना नहीं पड़ता है। जन्म होता है, जीवन होता है, मृत्यु होती है, हमारे करने से नहीं; होता है। जीवन में बहुत कुछ है जो हो रहा है अपने से। और अगर हम कुछ करेंगे तो बाधा पड़ेगी होने में--गति नहीं आएगी। खाना आपने खा लिया है, फिर वह पचता है, आपको पचाना नहीं पड़ता। और अगर आपको पचाना पड़े, तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। और अगर आपको ख्याल भी आ जाए कि मुझे पचाना है खाना, तो आप बड़ी कठिनाई में पड़ जाएंगे और पाचन में बाधा पड़ जाएगी। न हो तो कभी प्रयोग करके देखें। खाना खाने के बाद ख्याल रखें कि भोजन पेट में पच रहा है। तो आप पाएंगे चौबीस घंटे के बाद कि भोजन नहीं पच पाया। जो रोज पचता था, उसमें बाधा पड़ गई। कभी कोशिश करके सोकर देखें, प्रयास करें सोने का, तो फिर पाएंगे कि नींद आनी मुश्किल हो गई है। नींद आती है, लानी नहीं पड़ती है।
यह समझ लेना जरूरी है कि जीवन में बहुत कुछ है जो अपने से होता है, हमें नहीं करना होता। और यदि हम करते हैं तो उलटे बाधा ही पड़ती है, सहयोग नहीं मिलता है।
ध्यान भी उन्हीं दिशाओं में से एक है, जहां हम जा सकते हैं, लेकिन अपने
को ले जा नहीं सकते; जहां हमारा विकास हो सकता है, लेकिन हम अपने को धक्का देकर विकास नहीं करवा सकते।
यह बात बहुत स्पष्ट रूप से मन के सामने प्रकट हो जानी चाहिए कि ध्यान हमारी कोई क्रिया नहीं है, ध्यान हमारा समर्पण है। लेकिन हमारी भाषा में बहुत बड़ी भूल हो जाती है, समर्पण भी एक क्रिया है। तो सरेंडर भी तो एक क्रिया है, समर्पण करना भी एक क्रिया है और ध्यान करना भी एक क्रिया है। असल में जिंदगी और भाषा में कुछ बुनियादी भेद हैं, और धीरे-धीरे हम भाषा के इतने आदी हो जाते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि जिंदगी कुछ बात और है। हिंदुस्तान का नक्शा हिंदुस्तान नहीं है और न घोड़ा शब्द घोड़ा है। घोड़ा शब्द तो लिखा है शब्दकोश में और घोड़ा बंधा है अस्तबल में। और दोनों में बड़ा भेद है। जिंदगी और शब्दों में बड़ा भेद है। शब्द प्रत्येक चीज को जो शक्ल दे देते हैं, हम अगर जिंदगी में भी उसको खोजने गए, तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे।
अब जैसे प्रेम करना एक क्रिया है शब्दों की दुनिया में; लेकिन जीवन में प्रेम किया ही नहीं जा सकता, होता है। वहां वह क्रिया नहीं है; वहां वह घटना है, हैपनिंग है। वहां कोई मनुष्य प्रेम में पड़ जाता है, कर नहीं सकता प्रेम। और अगर आपसे कहा जाए कि फलां व्यक्ति को प्रेम करो, तो ज्यादा से ज्यादा आप प्रेम का अभिनय कर सकते हैं, प्रेम नहीं कर सकते। अगर चेष्टा की प्रेम करने की, तो आप खुद ही भीतर पाएंगे कि भीतर तो प्रेम नहीं है। चेष्टा से प्रेम असंभव है। मां बेटे को प्रेम नहीं करती; मां का बेटे से प्रेम होता है। और प्रेमी भी प्रेयसी को प्रेम नहीं करता है; प्रेम होता है। लेकिन भाषा में प्रेम क्रिया है और जीवन में प्रेम एक घटना है, क्रिया नहीं है। भाषा और जीवन में भेद पड़ जाता है। ऐसे ही ध्यान किताब में पढ़ेंगे तो लगेगा करना पड़ेगा। और अगर ध्यान को समझने जाएंगे तो पता चलेगा करना

नहीं है। करना हो तो बहुत आसान भी मालूम पड़ता है, न करना बहुत कठिन मालूम पड़ता है।
तो फिर क्या किया जाए? मैंने यह मुट्ठी बांध ली, तो मुट्ठी बांधना एक क्रिया है। बांधने के लिए मुझे कुछ करना पड़ रहा है। फिर मैं किसी के पास जाऊं और पूछूं कि मुझे मुट्ठी खोलनी है, अब मैं क्या करूं? बांधना एक क्रिया है भाषा में, खोलना भी एक क्रिया है भाषा में; लेकिन जिंदगी के तथ्यों में बांधना तो क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है। खोलने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा, सिर्फ बांधना बंद कर देना काफी है। मैं बांधू न, तो मुट्ठी खुल जाएगी--मुट्ठी का खुलना अपने से हो जाएगा।
बांधना पड़ता है हमें, खुलना अपने से हो जाता है। अशांत होना क्रिया है, शांत होना क्रिया नहीं है। अशांत होने के लिए हमें बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। अशांत होने के लिए बड़ा श्रम करना पड़ता है। और अशांति में सफल होने के लिए बड़ी कुशलता चाहिए। लेकिन शांत होना क्रिया नहीं है। अगर हम अशांत होना बंद कर दें, तो बस शांत होना हो जाएगा। इसको ऐसा भी समझ सकते हैं कि अशांति और शांति में विरोध नहीं है। अशांति और शांति एक-दूसरे के उलटे नहीं हैं। अशांति का अभाव, एब्सेंस शांति है। जहां अशांति नहीं रह जाती वहां शांति है। हमारी जो पकड़ है करने की, उसे पहले समझ कर छोड़ देना चाहिए।
ध्यान हम करेंगे नहीं, ध्यान में हम होंगे। ध्यान में हम जाएंगे, लेकिन ध्यान हम करेंगे नहीं। ध्यान में हम बहेंगे, तैरेंगे नहीं। तैरना क्रिया है, बहना क्रिया नहीं है, बहना एक घटना है। उसमें हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता। और इसलिए बड़े मजे की बात है, जिंदा आदमी नदी में डूब जाए, मरे हुए आदमी को कभी डूबते हुए नहीं देखा गया; बल्कि जिंदा आदमी भी डूब जाए तो मरते ही ऊपर आ जाता है वापस।
नदी भी बड़ा गजब का काम करती है! जिंदा को डुबा देती है और मुर्दे को उठा देती है! जिंदा को मार डालती है और मुर्दे को ऊपर तैरा देती है! आखिर मुर्दे में ऐसी कौन सी कला है कि वह ऊपर आ जाता है और जिंदा नीचे चला जाता है? मुर्दे के पास एक कला है जो जिंदा के पास नहीं है। मुर्दा तैर नहीं सकता, वह तैरने में असमर्थ है। तैरने का उपाय ही नहीं है, मुर्दा सिर्फ बह सकता है। जो तैरता नहीं, वह नदी के ऊपर आ जाता है और जो तैरता है, वह नीचे चला जाता है। बात क्या है? तैरने में शक्ति का व्यय होता है--तैरने में नदी से लड़ना पड़ता है। नदी बहुत बड़ी है। और जीवन की नदी तो बहुत बड़ी है, उससे अगर हम लड़ेंगे तो डूबेंगे ही, मरेंगे ही; क्योंकि लड़ने में शक्ति नष्ट होगी। मुर्दा लड़ता ही नहीं, वह नदी के साथ एक हो जाता है। वह कहता है नदी से, जहां ले चलो वहीं चलने को राजी हैं। डुबाओ तो डूबने को राजी हैं, उठाओ तो उठने को राजी हैं। किनारे फेंक दो, तो जिस किनारे फेंक दो वही हमारी मंजिल है। कहीं हमें जाना नहीं है, और ले चलो साथ तो साथ चलने को राजी हैं। मुर्दा कहता है कि हम अलग नहीं; तुम्हारे साथ हैं। फिर नदी बड़ी मुश्किल में पड़ जाती है। मुर्दे को नदी हरा नहीं पाती है। मुर्दा नदी से ज्यादा ताकतवर सिद्ध होता है। मुर्दा मरा हुआ और जिंदा आदमी कमजोर हो जाता है! जिंदा लड़ता है, इसलिए कमजोर हो जाता है। रेसिस्ट करता है, विरोध करता है, इसलिए टूट जाता है।
ध्यान--मुर्दे आदमी की भांति हो जाने का नाम है। हम कुछ भी नहीं करते हैं, हम जीवन के प्रवाह में छोड़ देते हैं अपने को। जो हो, हो। इस स्थिति को समझने के लिए तीन छोटे प्रयोग हम करेंगे। कल भी किए, परसों भी किए। तीन छोटे प्रयोग। पहला प्रयोगः बहने का, जैसा मुर्दा बह जाए।
कल एक मित्र ने आकर कहा कि सूखा पत्ता, सोच नहीं पाते कि सूखा पत्ता नदी में बह रहा है। तो हम सोच नहीं पाते अपने को सूखे पत्ते की तरह। तो मैंने कहा, अच्छा है, मुर्दे की तरह सोचें। एक मुर्दा बह रहा है, लाश बह रही है। और सूखे पत्ते में और मुर्दे में फर्क नहीं है, सूखा पत्ता हरे पत्ते की लाश है और मुर्दा हमारी लाश है। इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। हरा पत्ता जिंदा है और सूखा पत्ता मर गया है। वह भी लाश है हरे पत्ते की। हरा पत्ता लड़ता है हवाओं से। हवाएं पूरब जाती हैं, तो हरा पत्ता कहता है, नहीं

जाएंगे। हवाएं पश्चिम जाती हैं, तो हरा पत्ता कहता है, अपनी जगह रहेंगे। इसलिए तो हरे पत्ते से गुजरती हवा में शोरगुल हो जाता है; क्योंकि पत्ते लड़ाई करते हैं। सूखा पत्ता कहता है, जहां ले चलो, जहां मर्जी, वहीं राजी हूं। सूखा पत्ता--पूरब ले जाती है हवा, पूरब चला जाता है; पश्चिम ले जाती है, पश्चिम चला जाता है। सूखा पत्ता विरोध नहीं करता।
ध्यान अविरोध है। नॉन-रेसिस्टेंस है। तो पहला प्रयोग बहने का हम करेंगे। दूसरा प्रयोग मरने का है। और तीसरा प्रयोग तथाता का और चौथा प्रयोग ध्यान का है। पहले तीन प्रयोग पांच-पांच मिनट करेंगे, ताकि हमें ख्याल में आ जाए। शब्द से भी ख्याल में आ सकता है, लेकिन कठिन है। इसलिए मैं चाहता हूं कि प्रतीति... जब मैं कहूं, बहना, तो आपको भीतर प्रतीति हो जानी चाहिए कि बहने का क्या मतलब है। एक दफा प्रतीति हो जाए फिर तो शब्द भी काम करता है। जैसे मैं आपसे कहूं, नीबू, और आप थोड़ी देर नीबू को सोचें, तो आप पाएंगे मुंह में पानी आना शुरू हो गया। अभी नीबू तो नहीं है, लेकिन नीबू का शब्द भी मुंह में पानी ला सकता है। क्यों? नीबू का अनुभव है, वह पानी लाया है मुंह में। और नीबू शब्द में भी वह अनुभव समा गया है। तो नीबू शब्द को सोच कर भी मुंह में पानी आ सकता है, मुंह को क्या पता कि नीबू है या नहीं। जब होता है तब भी पता नहीं होता, आपके मन को पता होता है, वह खबर देता है मुंह को कि नीबू है, इसलिए मुंह पानी छोड़ देता है। नीबू नहीं है और आप मन को कहते हैं कि नीबू है, तो मुंह को तो कुछ पता नहीं है नीबू के होने न होने का, वह पानी छोड़ सकता है। शब्द भी सार्थक हो सकते हैं, अगर अनुभव से जुड़ जाएं।
इसलिए हम बहने का प्रयोग करके अनुभव करें कि बहने का मतलब क्या है? और
जब हमें भीतर से समझ में आ जाए कि यह रहा बहने का मतलब, यह मुर्दे की तरह होकर बह गए। तो फिर जब मैं कहूंगा, बहें, तो आप समझ पाएंगे कि मैं क्या कह रहा हूं।
पहला प्रयोग करें। आंख बंद कर लें और शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद
कर लें, बंद कर लें मतलब बंद हो जाने दें। आंख को ढीला छोड़ दें, पलक झपक जाएं और बंद हो जाएं। हां, किसी को लेटना हो, लेट जाए। लेटने में और भी सुविधा हो जाएगी। और जगह तो काफी है, लेट सकते हैं। किसी को लेटने की पहले से ही तो पहले से ही लेट जाएं, क्योंकि तब और आसानी से बह सकेंगे। बैठने में भी थोड़ा तनाव तो रहा ही आता है कि हम बैठे हैं, बैठे हैं। बैठना एक क्रिया है और लेटना एक क्रिया नहीं है।
शरीर को ढीला छोड़ दें, आंखें बंद कर लें। और भीतर एक चित्र उभारें, मन
के पर्दे पर देखें धूप में चमकते हुए, सुबह की धूप में चमकते हुए पहाड़ हैं। पहाड़ों के बीच में कलकल बही जाती एक तेज नदी की धार है। गहरी है बहुत, नीला है रंग। पहाड़ चमकते हैं धूप में, नदी का नीलापन चमकता है धूप में। उसकी भागती लहरें और गति चमकती है धूप में। नदी तेज भागी चली जा रही है। इस चित्र को ठीक से मन पर स्पष्ट कर लें। नदी तेजी से भागी चली जाती है। नदी बह रही है तेज सागर की तरफ, किसी अज्ञात सागर को खोजने निकल पड़ी है। ठीक से देख लें नदी के बहने को, चित्र को ठीक से उभार लें, ताकि बहना भी ख्याल में आ जाए। नदी कैसे बह रही है, ऐसे ही हमें भी बहना है। नदी कुछ करती नहीं बहने में, बस बही चली जाती है। अब इस नदी में अपने को भी डाल दें एक मुर्दे की भांति। फिर डूबने का उपाय ही न रहेगा। अपनी लाश को बहता हुआ देखें इस नदी में। अब लाश तैर नहीं सकती, इसलिए तैरने की कोशिश मत करना। तैरने का सवाल ही नहीं है। हाथ-पैर छोड़ कर पड़ गए हैं, मुर्दे की तरह बहे जा रहे हैं, भागे जा रहे हैं, नदी के साथ ही बहे जा रहे हैं। एक पांच मिनट तक नदी में बहने का अनुभव करें। ताकि भीतर मन के कोने-कोने तक बहने की प्रतीति प्रकट हो जाए। ध्यान का पहला चरण हैः फ्लोटिंग का अनुभव, बहने का अनुभव।
अब देखें, पहाड़ चमकते हुए, बहती, भागती नदी, उसकी नीली धार, उसमें पड़े
हम मुर्दे की भांति। कोई प्राण नहीं, हाथ-पैर हिलाने का उपाय नहीं। चाहें भी तो नहीं हिला सकते। और बही जा रही है लाश तेजी से नदी के साथ। तैर नहीं रही, कहीं जाना नहीं, कहीं पहुंचना नहीं लाश को, सिर्फ नदी के साथ बहना है। देखें, अपने को बहता हुआ देखें। एक पांच मिनट तक अपने को बहता हुआ अनुभव

करते रहें। बहते-बहते ही मन का बहुत सा कूड़ा-करकट बह जाएगा--अशांति बह जाएगी, तनाव बह जाएगा, चिंता बह जाएगी। हलका हो जाएगा भीतर सब, जैसे भीतर तक स्नान प्रवेश कर गया हो--ऐसी ताजगी हो जाएगी।
बहें... बह जाएं, छोड़ दें अपने को, बिल्कुल बह जाएं, छोड़ दें अपने को। नदी भागी जाती है और हम बहे जा रहे हैं। धूप में चमकते हुए पहाड़ हैं, नदी की धार है, ठंडी हवाएं हैं, पक्षियों के गीत हैं और हम बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं... छोड़ दिया अपने को एक मुर्दे की भांति। नदी भागी चली जाती है, उसी में हम बहे चले जा रहे हैं। मन हलका हो जाएगा, बिल्कुल शांत हो जाएगा, ताजा हो जाएगा, जैसे भीतर तक स्नान हो गया हो, जैसे आत्मा तक नहा गई हो। बह जाएं, छोड़ दें अपने को। छोड़ते ही सब शांत हो जाता है। पकड़ ही अशांति, पकड़ ही तनाव है। छोड़ दिया फिर कैसा तनाव? फिर कैसी अशांति? नदी से जरा भी विरोध न करें, नदी जहां ले जाए, बहे जाएं, बहे जाएं, बहे जाएं। नदी डुबा दे तो डूब जाएं, नदी बहा दे तो बह जाएं। छोड़ दें अपने को, भागे चले जाएं नदी के साथ।
बहे जा रहे हैं... बहे जा रहे हैं... बहने के इस अनुभव को ठीक से समझ लें, ध्यान का यह पहला चरण है। तैरना नहीं है, बह जाना है। लड़ना नहीं है, छोड़ देना है। फिर जो हो, हो। नदी जहां ले जाए, ले जाए। मन बिल्कुल हलका, भारहीन, शांत, मौन हो जाएगा। हो गया है, मन बिल्कुल ताजा हो गया है।
धीरे-धीरे नदी के बाहर निकल आएं, किनारे पर खड़े हो जाएं। नदी अभी भी भागी चली जाती है, हवाएं बह रही हैं, सूरज की किरणों में पहाड़ चमक रहे हैं। हम नदी के तट पर खड़े हो गए हैं। पांच मिनट के बहने ने क्या-क्या फर्क किया, वह भीतर अनुभव कर लें। मन शांत हो गया है, हलका और ताजा हो गया है, प्रफुल्लित हो गया है, जैसे आत्मा तक नहा गई हो ऐसा स्वच्छ और ताजा हो गया है। जो बहना सीख लेता है, वह शांत हो जाता है। जो जीवन की सरिता में बहना सीख गया है, वह तनाव से मुक्त हो जाता है। यह पहला चरण हैः बहना।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें। दूसरा प्रयोग समझें और पांच मिनट के लिए दूसरा प्रयोग करें।
दूसरा प्रयोग और भी गहरा है। बहते हैं, तो भी हम हैं। तैरते नहीं हैं, बहते हैं, लेकिन फिर भी हम हैं। हमारा होना भी बाधा है। दूसरे प्रयोग में "होने" को भी मिटा देना है। दूसरा प्रयोग मिटने का प्रयोग है। दूसरा प्रयोग मर जाने का प्रयोग है। और अपने को ही मरा हुआ देख पाना बड़ा कीमती अनुभव है।
बुद्ध तो ऐसा करते थे कि जो ध्यान सीखने आते उनके पास उन्हें तीन महीने के लिए मरघट पर बिठा देते थे। तीन महीने मरघट पर ही निवास करना पड़ता ध्यान करने वाले को। और जब भी कोई लाश जलने आती तब उसे चिता के पास खड़ा हो जाना पड़ता। दिन में दो-चार-दस लोग भी मरते, कभी एक मरता, कभी दो मरते। रात मरघट का सुनसान होता। और ध्यान यह था कि जब लाश जलती हो किसी की तो वह जो ध्यानी है वह किनारे खड़ा हो जाए और अनुभव करता रहे कि मैं ही जल रहा हूं, मैं ही जल रहा हूं। यह और कोई नहीं जल रहा है, चिता पर मैं ही जल रहा हूं। तीन महीने में उस आदमी का शरीर-बोध नष्ट हो जाता। तीन महीने में "मैं शरीर हूं" यह कल्पना ही मिट जाती। "मैं शरीर हूं" यह भाव ही टूट जाता। तीन महीने निरंतर अपने को चिता पर चढ़ा कर वह अनुभव कर पाता कि मैं अलग हूं, मैं पृथक हूं।
दूसरा प्रयोग कल्पना में चिता पर अपने को चढ़ा देने का प्रयोग है। उससे हम समझ पाएंगे कि कुछ है जो हममें जल जाने वाला है, वह जल जाएगा। फिर भी कुछ बच रहता है।
किसी मित्र ने पूछा है कि चढ़ा तो देता हूं चिता पर अपने को, लेकिन फिर
भी मैं तो किनारे खड़ा देखता रहता हूं।
निश्चित ही, कुछ हमारे भीतर है, जो सच में ही हम चिता पर चढ़ेंगे तो भी किनारे खड़े होकर ही देखता रहेगा। कल्पना की चिता पर ही नहीं, असली चिता पर भी जब आप चढ़ेंगे, मैं चढूंगा, तो कुछ है जो किनारे खड़े होकर देखता रहेगा। कुछ है जो बाहर खड़े होकर देखता रहेगा। वह अभी कल्पना में ही वही बाहर खड़ा है। शरीर तो चढ़ा दिया जा सकता है चिता पर, लेकिन कुछ है भीतर जो चिता पर चढ़

ही नहीं सकता, जिसे कोई अग्नि नहीं जला सकती, जिसकी कोई मृत्यु नहीं, वह तो बाहर खड़े होकर देखता रहेगा।
आंख बंद करें और दूसरे प्रयोग में उतरें। आंख बंद करें, शरीर को ढीला छोड़ दें। लेटना हो, लेट जाएं। शरीर ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। और दूसरा चित्र उभारें आंखों में--चिता जल रही है, मरघट पर हैं। सुनसान मरघट अचानक आज लोगों से भर गया है, आपके प्रियजन, मित्र, बंधु सब इकट्ठे हैं। वे आपको विदा करने आए हैं। वे आखिरी नमस्कार करने आए हैं। चिता जल गई है। आपकी अरथी रखी है। चिता में लपटें उठने लगी हैं। चिता की लपटें आकाश की तरफ दौड़ी चली जा रही हैं, चमकती लाल लपटें, जो सब कुछ जला डालेंगी, जो कुछ भी बचने न देंगी, जो सब मिटा डालेंगी, वे आकाश की तरफ भागी चली जा रही हैं। चिता पूरी सुलग गई है। आग पूरी पकड़ गई है। अब आपकी अरथी खोली जा रही है और आपकी लाश को आपके प्रियजन चिता पर रख रहे हैं। आप ही को रखा जा रहा है। यह किसी और की चिता नहीं है आपकी ही चिता है। यह किसी और का शरीर नहीं है यह आपका ही शरीर है। दूसरों के शरीर को तो आपने भी जाकर चढ़ा दिया होगा, आज अपना ही शरीर चढ़ गया है। आग बढ़ती जा रही है, शरीर ने भी आग की लपटें पकड़ ली हैं, शरीर जल रहा है।
देखें... पांच मिनट तक इस अपने ही जलते हुए शरीर को देखें। अपने को ही जलता हुआ देखना बड़ा अनुभव है। अगर ठीक से देख लें, तो हम दूसरे ही आदमी हो जाएं। अपने को ही चिता पर देखना बड़ा गहरा अनुभव है। अगर ठीक से ख्याल में आ जाए तो बाद में हम वही आदमी कभी नहीं हो सकते जो चिता पर चढ़ने के पहले थे। कुछ तो हममें जल ही जाएगा, कुछ तो हममें नष्ट ही हो जाएगा।
देखें... लपटें बढ़ती जा रही हैं, अंधेरी रात, अंधेरी रात के पर्दे पर चमकती लाल लपटें आकाश की तरफ भागती हुईं। मित्र, प्रियजन घेरा बांध कर खड़े हैं, दूर जरा, अब उतने पास नहीं जितने सदा पास थे। लपटों के पास कौन होगा? और मरते के पास कौन होगा? और मर गए के पास कौन होगा? दूर खड़े हैं घेरा बांध कर। लपटें उनको झुलसाती हैं, वे और दूर हटते चले जा रहे हैं। और लपटें बढ़ती चली जा रही हैं और आप जल रहे हैं, आप जल रहे हैं... जाने मैं जल रहा हूं, नष्ट हो रहा हूं, समाप्त हो रहा हूं, मर रहा हूं। पांच मिनट तक देखते रहें। लपटें बहुत बेरहम हैं, तेजी से जल रही हैं और जला रही हैं। लपटें बहुत तेज हैं। सब झुलसा जा रहा है, सब राख हुआ जा रहा है। देखें... देखते रहें अपने को जलता हुआ, मिटता हुआ, राख होता हुआ। तेज हवाएं हैं, लपटों को बढ़ाती हैं और लपटें तेज हो जाती हैं। सब जला जा रहा है... सब मिटा जा रहा है... सब राख हुआ जा रहा है। मित्र, प्रियजन धीरे-धीरे विदा होने लगे हैं। अब उनके चेहरे नहीं पीठें दिखाई पड़ती हैं। अब वे जा रहे हैं, आखिरी नमस्कार भी हो गया। अब सब राख हो जाएगा। और राख से कौन प्रेम करता है? राख के लिए कौन रुकता है? सब जा चुके हैं, जा रहे हैं। अकेले रह गए हैं, लाश के जले हुए टुकड़े पड़े हैं, राख पड़ी है। लपटें हैं, सुनसान मरघट है, अंधेरी रात है। धीरे-धीरे लपटें भी बुझ जाएंगी, अंगारे भी बुझ जाएंगे, अंधेरे में दबी राख भर पड़ी रह जाएगी।
देखें... सब राख हुआ जा रहा है। लपटें बुझ गई हैं, अंगारे बुझ गए हैं, राख का ढेर पड़ा है। अंधेरी रात ने चारों तरफ से घेर लिया, कोई भी नहीं। राख का ढेर ही हम हो गए हैं। इस राख के ढेर को ठीक से पहचान लें--यही हम हैं! इसी राख के ढेर ने बहुत बार अपने को दर्पण के सामने खड़ा किया था। इसी राख के ढेर में न मालूम कितने सपने देखे। इसी राख के ढेर ने न मालूम क्या-क्या सोचा, बनाया-बिगाड़ा था। इस राख के ढेर को ठीक से समझ लें, देख लें, पहचान लें, मिट्टी मिट्टी में वापस लौट गई है।
मिट जाने का अनुभव ध्यान का दूसरा चरण है। जो मिट सकता है, वही प्रभु
को पा सकता है। जो मिटने में असमर्थ है, वह उसे पाने का पात्र भी नहीं है। देख लें इस राख के ढेर को ठीक से, प्रभु के चरणों में यही समर्पित करना है-- अपनी ही राख, अपनी ही मृत्यु, अपना ही मिट जाना और उसके द्वार खुल जाते हैं। राख का पड़ा हुआ ढेर है, मरघट है, सुनसान अंधेरी रात है। और यह राख का ढेर और कोई नहीं हम ही हैं। सब समाप्त हो गया। अपने को ही मिटते हुए देखा है, समाप्त होते देखा है। रूप तो मिट गया, अब अरूप रह गया। आकार तो मिट गया,

अब निराकार रह गया। देह तो मिट गई, आत्मा ही रह गई है। इसे ठीक से पहचान लें।
फिर धीरे-धीरे आंख खोलें, तीसरे प्रयोग को समझें और पांच मिनट उसे करें।
तीसरा प्रयोग और भी गहरा प्रयोग है। पहले प्रयोग में हम बहते हैं, लेकिन होते हैं। न बहने में भी हम कुछ किए होते हैं। तैरते नहीं हैं, लेकिन फिर भी होते तो हैं। दूसरे प्रयोग में मिट जाते हैं, लेकिन हम ही मिटते हैं। और सब मिट जाता है फिर भी गहरे में जो हम हैं वह फिर भी हम शेष रह जाते हैं बाहर खड़े।
तीसरे प्रयोग में और भी गहरी दिशा में प्रयोग करना है। अब एक ही हो जाना है उस सबसे, जो है। पक्षियों की आवाजें हैं, वे पक्षियों की नहीं हमारी ही आवाजें हो जाएंगी। और हवाएं बह रही हैं, उनके झोंके पत्तों को हिला रहे हैं, वे हवाएं न रहेंगी, वे हम ही हो जाएंगे। और पत्ते हिल रहे हैं, सूरज की धूप में चमक रहे हैं, हवाओं में नाच रहे हैं, वे पत्ते न रह जाएंगे, वे हम ही हो जाएंगे। जो भी है, उसके साथ हम एक हो जाएंगे।
कैसे एक हो सकते हैं? स्वीकार से। अगर सब हमें स्वीकार हो जाए तो हमारा भेद गिर जाता है।
अद्वैत को वही उपलब्ध होता है, अभेद को वही उपलब्ध होता है जो सर्व स्वीकार को उपलब्ध हो जाता है। जिससे हम विरोध करते हैं, उससे हम टूट जाते हैं। जिससे हमारा विरोध नहीं, उससे हम जुड़ जाते हैं। जिसे हम इनकार करते हैं, उसके हमारे बीच सीमा खिंच जाती है। जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हमारे बीच की सीमा विलीन हो जाती है। अगर हम सर्व और अपने बीच कोई सीमा न खीचें, कोई भेद-रेखा न खींचे, कोई विरोध न बांधें, तो सर्व और हमारे बीच न कोई रेखा है, न कोई भेद है, न कोई विरोध है। हमारा खींचा हुआ विरोध है, हमारी खींची हुई रेखा है। उस रेखा को हम अभी पोंछ डाल सकते हैं।
ध्यान के तीसरे प्रयोग में उस रेखा को बिल्कुल पोंछ डालना है। तब ऐसा अनुभव नहीं करना है कि मैं यहां हूं और वहां पक्षी आवाज कर रहे हैं। न, जो आवाज कर रहा है पक्षियों में, वही यहां सुन भी रहा है। विरोध कैसा! किसका विरोध? मैं ही आवाज कर रहा हूं, मैं ही सुन रहा हूं। सर्व स्वीकार से ऐसी प्रतीति होनी शुरू हो जाती है। अब यह ट्रेन निकल रही है, अगर सारे मन से स्वीकार हो जाए, तो ट्रेन बाहर निकलती हुई मालूम नहीं पड़ेगी, कहीं हमारे भीतर ही निकलती हुई मालूम पड़ेगी। उसके पहियों की आवाज, उसकी सीटी का शोर, वह हमारे भीतर ही उठता हुआ मालूम पड़ेगा। ऐसा लगेगा, हम फैल कर बहुत बड़े हो गए हैं, सारे जगत को घेर लिया। और सब हमारे भीतर ही हो रहा है।
इस तीसरे प्रयोग को मैं कहता हूंः तथाता। थिंग्स आर सच। चीजें ऐसी हैं और हमने उन्हें स्वीकार कर लिया, हमारा कोई विरोध नहीं है। चीजों का जैसा होना है वैसे के लिए हम राजी हो हैं।
एक फकीर के पास एक आदमी गया था। और उस फकीर ने उसने कहा कि आप तो बहुत शांत हैं और मैं बहुत अशांत हूं, तो मुझे शांत होने का रास्ता बता दें। उस फकीर ने कहाः रास्ते की क्या जरूरत है? मैं शांत हूं, तुम अशांत हो। मैं अपनी शांति में राजी हूं, तुम अपनी अशांति में राजी हो जाओ। उस आदमी ने कहाः मैं कैसे राजी हो जाऊं? मैं अशांत हूं, मुझे अशांति मिटानी है। उस फकीर ने कहाः जब तक मिटाना है, तब तक तुम शांत न हो सकोगे। अपनी अशांति में राजी हो जाओ, फिर देखो अशांति बचती है या नहीं बचती है! अगर कोई अपनी अशांति में भी राजी हो जाए, तो अशांति फिर कहां है? अशांति तो नाराजी में थी, अशांति तो विरोध में थी, अशांति तो इस बात में थी कि नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए, अशांति नहीं होनी चाहिए, मुझे शांत होना है। उस आदमी ने कहाः आप ठीक कहते हैं, लेकिन मुझे शांत होना है। उस फकीर ने कहा कि फिर तुम न हो सकोगे। और मैं तो कभी तुम्हारे पास पूछने न आया कि तुम बड़े अशांत हो, मैं बड़ा शांत हूं, तो मुझे अशांत होना है। मैं किसी के पास पूछने नहीं गया। मैं जैसा था, मैं वैसे को ही राजी हो गया और फिर मैं शांत हो गया। शांति परिणाम है, हम जैसे हैं, वैसे ही राजी होने का अंतिम फल है। शांत कोई भी नहीं हो

सकता। जो जो है, वैसा ही होने को राजी हो जाए, शांति पीछे चली आती है छाया की तरह।
उस आदमी ने कहाः फिर भी मेरी समझ में नहीं आता। उस फकीर ने उसका हाथ पकड़ा और मकान के बाहर ले आया। वहां आकाश को छूता हुआ एक बड़ा दरख्त है--ऊपर चांद निकला है--वह ऊपर आकाश तक उठ गया है। और पास में ही एक छोटा सा पौधा भी है। उस फकीर ने कहाः देखते हो उस दरख्त को? उस आदमी ने कहाः हां, देखता हूं, बहुत बड़ा है, आकाश को छूता है। और उस फकीर ने कहाः देखते हो इस छोटे से पौधे को? उसने कहाः हां, देखता हूं, बड़ा छोटा है, बेचारा। उस फकीर ने कहाः लेकिन बीस साल से मैं यहां हूं, मैंने इस छोटे दरख्त को बड़े से कभी पूछते नहीं देखा कि तू बहुत बड़ा है, मैं बहुत छोटा हूं, मैं बड़ा कैसे हो जाऊं? मैंने इनके बीच कभी चर्चा नहीं सुनी। छोटा अपने छोटे होने में राजी है और इसलिए छोटा नहीं रह गया। क्योंकि छोटा तो वह तभी मालूम पड़ सकता है जब वह छोटे होने को राजी न रह जाए और बड़े की कामना करने लगे। बड़ा अपने बड़े होने में राजी है इसलिए बड़ा नहीं है; क्योंकि बड़े का कोई सवाल ही नहीं, किसी से उसने तुलना ही नहीं की है।
वह फकीर कहने लगा, यह छोटे में राजी है, वह बड़े में राजी है, दोनों बड़े मजे में हैं। छोटा छोटा है। बड़ा बड़ा है। कोई झंझट नहीं, कोई झगड़ा नहीं, कोई तुलना नहीं, कोई अशांति नहीं। उस आदमी ने कहाः लेकिन फिर भी मैं नहीं समझा। तो उस फकीर ने कहा कि तू अपनी नासमझी में भी राजी हो जा। अब तू समझने की भी कोशिश मत कर। जा और समझ ले कि मेरी समझ में नहीं आता और इसके लिए राजी हो जा।
तथाता के प्रयोग का मतलब हैः जो है, उसके लिए हम राजी हैं। अज्ञान के लिए भी, अशांति के लिए भी, जो भी हमारे भीतर-बाहर है, सबके लिए राजी हैं। हमारा कोई विरोध ही नहीं है। एक पांच मिनट के लिए अविरोध का प्रयोग करें। हमारा कोई विरोध ही नहीं है। सब स्वीकार है। सब स्वीकार है। श्वास-श्वास में, रोएं-रोएं में स्वीकार की भावना भर जाए, तो पांच मिनट में आप पाएंगे, ऐसे आनंद के स्रोत खुल गए जो बिल्कुल अपरिचित थे, ऐसे द्वार खुल गए जो सदा बंद थे, और ऐसी शांति बह गई चारों तरफ जिसे हमने कभी न जाना।
आंख बंद कर लें, शरीर को शिथिल छोड़ दें। आंख बंद कर लें, शरीर को शिथिल छोड़ दें। और जो है उसके लिए पूरे मन से राजी हो जाएं। जो है--पक्षियों की आवाजें हैं, हवाओं के झोंके हैं, सूरज की जलती हुई किरणें हैं, रास्ते पर शोर है, कोई ट्रेन गुजरेगी, कोई कार आवाज करेगी, ऐसा बाहर है इसके लिए राजी हो जाएं। ऐसा है और हम राजी हैं। फिर भीतर बहुत कुछ होगा--कोई विचार चलेगा, कोई भाव उठेगा, उसके लिए भी राजी हो जाएं, ऐसा है। जो भी हो रहा है, उसके लिए राजी हो जाएं, ऐसा है। और अपने को बिल्कुल छोड़ दें स्वीकार के भाव में। तब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सब सीमाएं उठ जाएंगी, धीरे-धीरे सब भेद गिर जाएंगे। तब ऐसा न लगेगा कि धूप अलग और मैं अलग, और पक्षियों की आवाजें अलग और मैं अलग, तब हम फैल कर बड़े हो जाएंगे और सभी हमारे भीतर होने लगेगा। हम सबके साथ एक हो जाएंगे, अगर स्वीकार कर लें। पांच मिनट सब स्वीकार करके चुपचाप रह जाएं।
स्वीकार... स्वीकार... श्वास-श्वास में एक ही भाव--सब स्वीकार है। रोएं- रोएं में एक ही प्रार्थना--सब स्वीकार है। श्वास-श्वास में एक ही निवेदन-- सब स्वीकार है। रोएं-रोएं में एक ही पुकार--सब स्वीकार है, सब स्वीकार है, सब स्वीकार है, सब स्वीकार है, सब स्वीकार है। एक ही निवेदन, एक ही प्रार्थना, एक ही भाव--सब स्वीकार है, सब स्वीकार है... पक्षी आवाज कर रहे हैं, सड़क पर शोरगुल है, हवाएं इन वृक्षों को कंपाती हैं, सब स्वीकार है। सूरज की तेज किरणें माथे पर पड़ती हैं, सब स्वीकार है। कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं और मन एकदम शांत होता चला जाएगा, मन शांत होता चला जाएगा, मन शांत होता चला जाएगा, मन गहरे अर्थों में शून्य हो जाएगा।
सीमाएं गिर जाएंगी और सब एक मालूम होने लगेगा।
सब स्वीकार है... सब स्वीकार है... जैसा है, है और हम उसके लिए राजी हैं।
फिर देखें, मन कैसा शांत हो जाता है। फिर देखें, मन कैसे गहरे आनंद में उतर जाता है। फिर देखें, मन कैसे सारे जगत के साथ एकता साध लेता है।

इस भाव को ठीक से समझ लें, यह ध्यान की आत्मा है, प्राण है, ध्यान का केंद्र है। देखें, भीतर कोई रोक तो नहीं है, कोई अस्वीकृति तो नहीं है, जो हो रहा है वह वैसा न हो ऐसी कोई कामना तो नहीं है। हो तो उसे विदा कर दें। हो तो उसे विदा कर दें। सब स्वीकार कर लें, जो भी है, है। पक्षी आवाज कर रहे हैं, क्योंकि पक्षी आवाज करेंगे ही; हवाएं बह रही हैं, क्योंकि बहना हवाओं का धर्म है; सूरज की किरणें गरम हैं, गरम होंगी ही। जो है, वैसा उसका स्वभाव है और हम उसके लिए राजी हो गए हैं। हम उसके लिए राजी हो गए हैं। हमने अपना सब विरोध छोड़ दिया, हम सबके लिए राजी हो गए हैं। देखें, मन कैसी शांति से भर गया। देखें, मन कैसा मुक्त और शांत हो गया। देखें, भीतर कैसा सन्नाटा छा गया। इसे ठीक से पहचान लें। ध्यान में फिर इसी भाव में और गहरे जाना है। श्वास-श्वास शांत हो गई है, रोआं-रोआं शांत हो गया।

अब धीरे-धीरे आंखें खोल लें, ध्यान का अंतिम प्रयोग समझें और फिर ध्यान में प्रवेश करें।
बहने का भाव, मिट जाने का भाव, सर्व-स्वीकृति का भाव, ये ध्यान के तीन चरण हैं। इन तीनों को हमने अलग-अलग देखा और समझा, अब इन सबका तीनों का इकट्ठा प्रयोग करेंगे।
आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। कोई लेटना चाहे, पहले ही लेट जाए। और बीच में भी गिरने जैसा लगे तो अपने को कोई रोके न छोड़ दे और गिर जाए। ठीक बीच ध्यान में भी लगे कि शरीर गिरता है, तो रोकना नहीं है, गिर जाने देना है। बीच में गिर जाने देने की हिम्मत न हो तो पहले ही लेट जाएं। आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें। और अब मैं थोड़ी देर तक सुझाव दूंगा, मेरे साथ अनुभव करें। अनुभव करेंगे वैसा ही होता चला जाएगा। अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है। सबसे पहले शरीर की शिथिलता अनुभव करें। अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ दें ढीला और अनुभव करें--शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ते जाएं, एक-एक अंग ढीला छोड़ते जाएं और अनुभव करें, शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल होता जा रहा है... भाव करते-करते शरीर बिल्कुल मिट्टी की तरह ढीला और शिथिल हो जाएगा। गिर भी जाए, रोकें नहीं, गिर जाने दें। शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ दें बिल्कुल, जैसे नदी की धार में छोड़ा था, बह जाएं। शिथिलता की नदी में बिल्कुल बह जाएं, सब छोड़ दें। शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... शरीर शिथिल हो गया है... छोड़ दें... छोड़ दें... छोड़ दें... शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया है, जैसे कोई प्राण ही न हो, जैसे शरीर में कोई शक्ति ही न हो, शरीर बिल्कुल निष्प्राण, शिथिल और शांत हो गया है। श्वास भी शांत हो रही है... श्वास भी शांत होती जा रही है... भाव करें, श्वास शांत हो रही है... शांत हो रही है... शांत हो रही है... शांत हो रही है... और श्वास भी शांत होती चली जाएगी। श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत होती जा रही है... श्वास शांत होती जा रही है... श्वास शांत होती जा रही है... छोड़ दें बिल्कुल, श्वास को भी छोड़ दें, जैसे चिता पर सब छोड़ दिया था और जल गया था, ऐसे ही श्वास को भी छोड़ दें। श्वास के छोड़ते ही, श्वास के शांत होते ही शरीर खो जाएगा, विलीन हो जाएगा, पता ही न चलेगा कि शरीर है भी, ऐसा लगेगा शरीर न रहा और हम रह गए हैं। छोड़ दें श्वास को शांत, शांत, शांत... छोड़ दें।
शरीर शिथिल हुआ, श्वास शांत हो गई है और अब तथाता के सर्व स्वीकृति के भाव में डूब जाएं। जो है, जैसा है, है और हम राजी हैं। हम सिर्फ साक्षी हैं, हम सिर्फ जान रहे हैं। पक्षियों का शोरगुल है, हम जान रहे हैं। रास्ते पर हार्न की आवाज है, हम जान रहे हैं। हवाएं चलती हैं, पत्ते हिलते हैं, आवाज होती है, हम जान रहे हैं। धूप तेज है, माथे पर पसीना आता, हम जान रहे हैं। जो हो रहा है, हम उसके जानने वाले साक्षी के अतिरिक्त और कोई भी नहीं हैं। न हमारा कोई विरोध है, न हमें कुछ बदलना है, न कुछ हमारी आकांक्षा है। अब दस मिनट के लिए साक्षी के, सर्व स्वीकार के भाव में डूब जाएं। और जैसे-जैसे स्वीकृति बढ़ेगी, साक्षी बढ़ेगा, भीतर झरने फूटने लगेंगे शांति के, आनंद के।

नये-नये अनुभव भीतर प्रकट होने लगेंगे। छोड़ दें... दस मिनट के लिए साक्षीमात्र रह जाएं।
मात्र साक्षी रह गए हैं, जान रहे हैं, पहचान रहे हैं, गवाह हैं और कुछ
भी नहीं कर रहे हैं। जो भी हो रहा है चारों ओर, जो भी है, उसे जान रहे हैं, पहचान रहे हैं, उसके साक्षी हैं, उसके दृष्टा हैं और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। साक्षी होते ही मन शांत हो जाता है। साक्षी होते ही प्राण शांत हो जाते हैं। साक्षी होते ही आत्मा शून्य हो जाती है। साक्षी होते ही वे द्वार खुल जाते हैं जो प्रभु के मंदिर के हैं। साक्षी रह जाएं, बस साक्षी रह जाएं, साक्षी रह जाएं, बस साक्षी रह जाएं... । मन शांत हो गया है, शांति के फूल खिल गए हैं। मन आनंदित हो गया है, आनंद के झरने फूट पड़े हैं। मन आलोकित गया है, मन प्रकाश से भर गया है, परमात्मा के बहुत से दीये जल गए हैं... धीरे- धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास के साथ बहुत शांति, बहुत आनंद अनुभव होगा। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। आंख खोलने में तकलीफ हो तो दोनों हाथ आंख पर रख लें, फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। जो लोग लेटे हैं या गिर गए हैं, उनसे उठते न बने तो पहले थोड़ी श्वास लें फिर बहुत धीरे आंख खोलें, फिर आहिस्ता से उठें। कोई झटके से न उठे।
एक छोटी सी सूचना ख्याल में रख लें। पिछले तीन दिनों से आपसे कुछ बोल
कर बात कर रहा हूं; लेकिन बहुत कुछ है, जो बोल कर नहीं कहा जा सकता। बहुत कुछ है, जो मौन में ही कहा जा सकता है। अगर कोई भी मौन होने को राजी हो तो भीतर से भी बहुत कुछ दिया जा सकता है, कहा जा सकता है। तो आज दोपहर साढ़े तीन से साढ़े चार मौन प्रवचन है। मैं चुपचाप घंटे भर यहां बैठा रहूंगा। और आप भी चुपचाप आकर घंटे भर बैठे रहेंगे और प्रतीक्षा भर करेंगे कि कुछ भीतर आ जाए, आ जाए, आ जाए। कुछ भी नहीं करेंगे। आंख बंद करके लेटना होगा लेटेंगे; बैठना होगा बैठेंगे; वृक्ष से टिकना होगा टिकेंगे, जो जिसकी मौज हो, वैसा चुपचाप आकर साढ़े तीन बजे के पांच मिनट पहले ही यहां पहुंच जाएं, ताकि पीछे कोई बाधा न हो। चुपचाप आकर बैठ जाएं मौन से। एक घंटे मैं भी आपके पास मौन बैठा रहूंगा। देखें, जो शब्द से नहीं कहा जा सकता है, हो सकता है मौन से आप तक पहुंच जाए। उस बीच किसी को भी ऐसा लगे कि मेरे पास आना है, तो वह दो मिनट के लिए मेरे पास आकर बैठ जाएगा, फिर चुपचाप उठ कर अपनी जगह चला जाएगा।

सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई।

जीवन ही है प्रभु
सातवां प्रवचन

जीवन ही है प्रभु

मेरे प्रिय आत्मन्!
"जीवन ही है प्रभु" इस संबंध में और बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।
एक मित्र ने पूछा हैः बुराई को मिटाने के लिए, अशुभ को मिटाने के लिए, पाप को मिटाने के लिए विधायक मार्ग क्या है? पाजिटिव रास्ता क्या है? क्या ध्यान और आत्मलीनता में जाने से बुराई मिट सकेगी? ध्यान और आत्मलीनता तो एक तरह का पलायन, एस्केप है, जिंदगी से भागना है। ऐसा कोई मार्ग, विधायक, सृजनात्मक, जो भागना न सिखाता हो, जीना सिखाता हो, उस संबंध में कुछ कहें?

पहली तो बात यह है कि ध्यान पलायन नहीं है और आत्मलीनता पलायन नहीं है। बल्कि जो आत्मा से बच कर और सब तरफ भाग रहे हैं, वे पलायन में हैं। जो मेरे निकटतम है उसे जानने से बचने की कोशिश एस्केप है। हम अपने से ही बचने के लिए भाग रहे हैं। और मजा यह है कि भागने वालों की यह भीड़, अगर कोई अपने को जानने जाता है तो उससे कहते हैं, तुम जिंदगी से भागते हो। जिंदगी अपने अतिरिक्त और कहां से प्रारंभ हो सकती है? जिंदगी का पहला कदम तो आत्मज्ञान ही होगा। मेरी जिंदगी दूसरे से शुरू नहीं हो सकती। मेरी जिंदगी मुझसे शुरू होगी। गंगा निकलेगी तो गंगोत्री से। वह किसी और नदी के उदगम से नहीं निकल सकती है। उसे गंगोत्री से ही निकलना होगा।
मेरी जिंदगी मेरे भीतर से बाहर की तरफ जाएगी। मेरी जिंदगी मुझसे बहेगी और फैलेगी। और अगर मैं अपने को ही जानने से वंचित रह जाता हूं तो मैं जिंदगी को जानने से भी वंचित रह जाऊंगा।
इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि आत्म-ज्ञान की दिशा में जाने वाले लोग एस्केपिस्ट हैं, पलायनवादी हैं, वे बिल्कुल ही गलत बात कहते हैं। असल में पलायनवादी हम सब हैं जो आत्मा से बचने के लिए और न मालूम कहां-कहां जा रहे हैं। कोई शराब खोज रहा है कि अपने को भूल जाए। कोई संगीत खोज रहा है कि अपनी याद न आए। कोई सेक्स खोज रहा है; कोई सिनेमा खोज रहा है; कोई क्रिकेट का मैच देख रहा है; कोई हाकी-फुटबाल का मैच देख रहा है; कोई मित्रों को खोज रहा है; कोई जुए को खोज रहा है; कोई धंधे को खोज रहा है; कोई राजनीति को खोज रहा है--ताकि अपना पता न लगे। किसी भांति हम अपने को भूले हुए जी लें। इसलिए अकेला होना बहुत कठिन हो जाता है। अगर आदमी अकेला हो जाए तो उसी अखबार को फिर से पढ़ने लगता है जिसे दो बार पहले भी पढ़ चुका होता है। अकेला हो तो रेडियो खोल लेता है। अकेला हो तो उन्हीं बातों को करने लगता है, जिन्हें जिंदगी भर से न मालूम कितनी बार कर चुका है जिन्हें करने से कुछ मतलब नहीं। आदमी अकेले होने से डरता है कि अपना आमना-सामना न हो जाए। जितने हम अपने से डरते हैं, उतना हम किसी से भी नहीं डरते हैं। और जितने हम अपने से नाराज हैं और अपने को घृणा करते हैं, उतनी घृणा हम किसी को भी नहीं करते। अगर मैं एक घंटे अकेला छूट जाऊं तो मैं लोगों से कहता हूं, घंटा भर अकेला था, बहुत ऊब गया। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, अपने साथ घंटे भर रहना भी उबाने वाला है--अपने साथ! और अपने साथ ही जब घंटे भर रह कर मैं ऊब जाता हूं तो किसके साथ कितनी देर रह पाऊंगा और ऊब न जाऊं।
और बहुत मजे की बात है कि आप भी अकेले में ऊब जाते हैं अपने साथ, मैं भी अकेले में ऊब जाता हूं अपने साथ। हम दोनों मिल कर एक-दूसरे की ऊब दूर करने की कोशिश करते हैं। दोनों ऊबे हुए हैं। अपने से ही ऊबे हुए हैं, एक दूसरे की ऊब दूर करने की कोशिश में लगे हुए हैं, जैसे दो भिखारी रास्ते पर मिल गए हों और दोनों ने अपने-अपने भिक्षापात्र एक-दूसरे के सामने कर दिए हों कि कुछ मिल जाए। वे दोनों ही भीख मांगने निकले हैं। पत्नी पति के साथ रह कर सोचती है कि साथ में आनंद मिल जाएगा, पति पत्नी के साथ सोचता है, आनंद मिल जाएगा, और दोनों अकेले रह कर दुखी हो जाते हैं। जब दोनों अकेले होकर दुखी हैं तो दोनों मिल कर दुगुने दुखी हो सकते हैं, और कुछ भी नहीं हो सकता है।

क्योंकि मैं वही दे सकता हूं जो मेरे पास है। मैं वही बांट सकता हूं जो मैं हूं। लेकिन हम अपने से भागे हुए लोग हैं। लेकिन हमारी भीड़ है और भीड़ को एक सुविधा है कि वह जो कहे वह मानने, प्रतीत होने लगे। सारी भीड़ भागी हुई है। इसलिए जो अपनी तरफ लौट रहा हो, लगता है, एस्केप कर रहा है, पलायन कर रहा है, जिंदगी से भाग रहा है।
सच तो यह है कि जिंदगी अगर खोजनी हो तो पहले तो अपने घर जाना होगा। वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है जीवन के आनंद की। और जब मैं कहता हूं, जीवन ही प्रभु है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि अपने को छोड़ कर जो है वह जीवन है। मेरा जीवन मुझसे ही शुरू होता है। और जब मेरा जीवन बढ़ेगा तो धीरे-धीरे मेरा "मैं" ही बढ़ेगा, फैलेगा। ये वृक्ष मुझमें समा जाएंगे; और लोग भी मुझमें समा जाएंगे; ये चांद-तारे भी मुझमें समा जाएंगे। जितनी बड़ी यह मेरी चेतना फैलती चली जाएगी उतना ही बड़ा आनंद, उतने ही बड़े जीवन को मैं उपलब्ध होता चला जाऊंगा। लेकिन जिसे फैलना है उसका पता तो होना चाहिए, वह कौन हूं मैं? लेकिन हम कहते हैं, नहीं, यह तो जिंदगी से भागना हो जाएगा।
मैंने सुना है, एक आदमी की शादी हुई। वह जिंदगी में रोज ही शराब पीता रहा था। शादी के बाद भी दो वर्ष तक शराब पीता रहा। रोज ही पीता था, पत्नी को ख्याल ही न आया। जब कभी-कभी कोई शराब पीता है तो पता चलता है। रोज ही पीता था। पत्नी ने पहले दिन से ही उसके मुंह में वही बास देखी थी, वह समझी इसी की बास होगी। रोज वही चलता था। एक दिन उसने शराब न पी और वह घर आया। तो पत्नी को बड़ा गड़बड़ मालूम पड़ा। रोज के हिसाब से गड़बड़ था। उसने कहा, क्या बात है, क्या आज शराब पीकर आ गए हो? हाथ-पैर लड़खड़ाते हैं। उस आदमी ने कहा देवी, मैं रोज पीकर आता रहा हूं। आज ही नहीं पी, यह गलती हो गई। मुझे खुद ही अपने हाथ-पैर गड़बड़ मालूम पड़ रहे हैं। वह रोज पीकर आता था तो एक व्यवस्था थी, एक ढंग था, एक आदत थी, एक जिंदगी का अपना रूप था। एक दिन छोड़ दी है तो गड़बड़ हो गई है।
हम सारे लोग भी जिंदगी से भागे हुए लोग हैं और हमारे बीच में जब कभी कोई एक जिंदगी से लौटता है तो हम कहते हैं, कहां जा रहे हो जिंदगी को छोड़ कर! और हम सब जिंदगी से भागे हुए लोग हैं। जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, वह जिंदगी नहीं है। अगर वही जिंदगी होती तो हमारी आंखें आनंद से भर गई होतीं। अगर वही जिंदगी होती तो किसी मंदिर में हम परमात्मा को खोजने न गए होते। हमें जिंदगी में वह मिल गया होता। अगर वही जिंदगी होती तो हम पूछते न कि शांति का रास्ता क्या है? आनंद का रास्ता क्या है? वह हमने पा ही लिया होता। अगर वही जिंदगी होती तो ईश्वर के संबंध में हम बात न करते क्योंकि ईश्वर हमें मिल ही गया होता। लेकिन नहीं कुछ हमें मिला--न कोई सौंदर्य, न कोई सत्य, न कोई संगीत, न जीवन में कोई रस, न कोई आनंद--लेकिन फिर भी इसको हम कहते हैं जिंदगी।
अगर यही जिंदगी है तो फिर मौत क्या हो सकती है? सिर्फ सांस लेने का नाम जिंदगी है? सिर्फ रोज सुबह उठ आने का नाम जिंदगी है? सांझ सो जाने का नाम जिंदगी है? रोज खाना पचा लेने का और खाने कोशरीर के बाहर फेंक देने का नाम जिंदगी है? अगर यही जिंदगी है, तब तो ठीक है। लेकिन इतनी सी जिंदगी से कोई राजी नहीं है। जिंदगी में और फूलों की अपेक्षा है। जो कभी खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। लेकिन फिर भी हमें शक नहीं आता। शक न आने का कारण यह है कि आस-पास हमारे जैसे ही लोग हैं। शक का कोई सवाल नहीं है। जैसे चारों तरफ लोग जी रहे हैं, वैसे ही हम जी रहे हैं। जैसे सारे लोग जी रहे हैं, वही जिंदगी का ढंग मालूम पड़ता है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि हमारे बीच जो आदमी जिंदगी की तरफ गया है वह हमें उलटा मालूम पड़ता है कि हमसे उलटा जा रहा है। कोई सुकरात या कोई कृष्ण या कोई बुद्ध हमें उलटा मालूम पड़ता है। हमारी जिंदगी छोड़ कर कहां जा रहे हो? हम जिंदा रह रहे हैं, तुम भाग कहां रहे हो? अगर हम जिंदा हैं, और यही जिंदगी है, तो मैं कहूंगा कि वे भागने वाले ही ठीक हैं। वे हमसे वृहत्तर जिंदगी को उपलब्ध हो जाते हैं। कहां है बुद्ध की शांति हमारी जिंदगी में, और कहां है कृष्ण का आनंद, कहां है लाओत्सु का रस? हमारी जिंदगी में नहीं है।

लाओत्सु की जिंदगी में एक बहुत अदभुत घटना है। लाओत्सु एक नदी के किनारे बैठ कर मछली पकड़ रहा है। जाल डाल दिया है, बैठा हुआ है। उस देश के राजा ने, चीन के सम्राट ने लाओत्सु की खोज के लिए कुछ लोग भेजे हैं और उनसे कहा है कि लाओत्सु कहीं भी मिले तो उसे पकड़ लाओ। हमने सुना है कि वह बहुत बड़ा बुद्धिमान आदमी है और हमने सुना है कि उसने जिंदगी का राज पा लिया है। तो हम उसे देश का प्रधानमंत्री बनाना चाहते हैं ताकि वह सारे मुल्क को जिंदगी का राज बता दे। आखिर उन लोगों ने नदी के किनारे बामुश्किल लाओत्सु को पकड़ लिया है। पहले तो पता लगाना मुश्किल हुआ क्योंकि लाओत्सु कभी एक जगह टिकता ही न था। सिर्फ मरे हुए टिकते हैं, जिंदा तो बहते चले जाते हैं, बहते चले जाते हैं। मरे हुओं की जांच हो तो वे वहीं टिके रहते हैं। तो लाओत्सु का कोई ठिकाना न था।
जिस गांव में गया, लोगों ने कहा, हां, लाओत्सु था, लेकिन लाओत्सु तो हवा की तरह है आया और गया। वह किसी और गांव में होगा। बामुश्किल उस नदी के किनारे कुछ लोगों ने उसे जाकर पकड़ लिया। वह मछलियों को पकड़ने के लिए जाल डाल कर चुपचाप बैठा था। उन्होंने जाकर कहाः लाओत्सु, क्या पागलपन कर रहे हो, फेंको इस जाल को। देश का सम्राट तुम्हें प्रधानमंत्री बनाने को उत्सुक है। लाओत्सु ने गौर से उन्हें देखा और उनसे कहाः सुनो एक बात, मैंने सुना है कि तुम्हारे सम्राट के महल में एक सोने का कछुवा है। एक कछुवे के ऊपर सोने की पर्त चढ़ा दी गई है। उन्होंने कहा है, वह बहुत प्राचीन है, हजारों साल से, बापदादों से चला आ रहा है। उसकी पूजा होती है। उसे सिहांसन पर बिठाया है। उसके आस-पास लाखों के हीरे-जवाहरात जड़े हैं। लाओत्सु ने कहाः वही मैं पूछता हूं। है न ऐसा कछुवा? उन्होंने कहाः हां, ऐसा कछुवा है। लाओत्सु ने कहाः और पास में एक कछुवा पड़ा हुआ था, रेत में लोट रहा था, कीचड़ में खेल रहा था--लाओत्सु ने कहाः सुनो मुझसे। अगर तुम इस कछुवे से कहो कि हम तुम्हें सोने की वर्क चढ़ा कर और सिंहासन पर बिठा देंगे, तो यह वहां जाना पसंद करेगा या मिट्टी में ही लोटता रहेगा? लोगों ने कहा कि पागल होगा अगर यह वहां जाना पसंद करे। क्योंकि वहां सिंहासन पर बिना मरे कोई बैठ ही नहीं सकता। वहां मर जाना पड़ेगा, तभी सोना चढ़ेगा ऊपर। तो लाओत्सु ने कहा कि हम भी यहीं ठीक हैं, हम भी सिंहासन पर नहीं बैठते। क्षमा करो, वापस लौट जाओ। उन्होंने कहाः तुम पागल हो गए हो? जिंदगी को छोड़ते हो? प्रधानमंत्री का मौका मिल रहा है। उसने कहा, हम पूरी तरह जिंदा हैं, हम जरा भी कम जिंदा नहीं हैं। हम पूरी जिंदगी का मजा ले रहे हैं। और अपने प्रधानमंत्रियों से, अपने सम्राट से कह देना कि अगर जिंदगी को पाना हो तो लाओत्सु के पास आ जाएं, और लाओत्सु को जिस दिन मरना होगा, उनके पास आ जाएगा। उनमें से एक ने कहाः एस्केपिस्ट मालूम होते हो, पलायनवादी मालूम होते हो। कहां इतना बड़ा मौका मिल रहा है, उसे छोड़ कर भाग रहे हो? लाओत्सु ने कहा कि तुम यह कहते हो। अगर मैं जाऊंगा तो यह कछुवा मुझ पर हंसेगा, ये मछलियां मुझ पर हंसेंगी, ये हवाएं मुझ पर हंसेंगी, ये वृक्ष मुझ पर हंसेंगे कि फंस गया पागल! जिंदगी को छोड़ कर कहां जा रहा है?
जिंदगी कहां है, यह ठीक से हम समझ लें तो पलायन क्या है, यह भी समझ में
आ जाए। जिंदगी कहां है? जहां हम जी रहे हैं, वहां जिंदगी है? नहीं, हमने बहुत गहरी भूल कर ली है। हमने जीवित रहने के रास्तों को जिंदगी समझ लिया है। हमने आजीविका की व्यवस्था को जिंदगी समझ लिया है। हम रोटी कमा लेते हैं; मकान बना लेते हैं; पत्नी ले आते हैं; घर बसा लेते हैं; बच्चे पैदा कर लेते हैं और हम सोचते हैं--जिंदगी पूरी हो गई। यह तो सिर्फ जिंदगी की व्यवस्था हुई। अभी जिंदगी पूरी नहीं होगी, अब जिंदगी शुरू होनी चाहिए। यह तो सिर्फ व्यवस्था हुई।
एक आदमी पलंग ले आया और बिस्तर लगा दिया और मसहरी बांध दी और तकिए लगा दिए और खड़ा हो गया और उसने कहा, सोना पूरा हो गया। वह सोया नहीं उस मसहरी में, वह उस बिस्तर पर लेटा नहीं। उसने इंतजाम तो पूरा कर लिया, अब सोना पूरा हो गया। लेकिन बिस्तर का पूरा इंतजाम सोना नहीं है, सिर्फ सोने का प्रारंभिक कदम है।

जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं वह सिर्फ आजीविका की व्यवस्था है। और हम उसी में खो गए हैं और करीब-करीब ऐसा है कि हम उसी में खोए-खोए मर जाते हैं। जिंदगी जीने का हमें मौका ही नहीं मिलता। मिलेगा भी नहीं। जिंदगी की व्यवस्था बाहर हो सकती है, जिंदगी भीतर है। इस राज को ठीक से समझ लेना जरूरी है। जिंदगी की व्यवस्था बाहर हो सकती है, जिंदगी भीतर है। पलंग बाहर हो सकता है, जिसे सोना है वह भीतर है। रोटी बाहर हो सकती है, जिसे खाना है वह भीतर है। पत्नी बाहर हो सकती है, जिसे प्रेम करना है और देना है और लेना है वह भीतर है। जिंदगी का सारा इंतजाम बाहर है और जिंदगी भीतर है। लेकिन हम बाहर के ही इंतजाम में खो जाते हैं और भूल जाते हैं। कोई आदमी भीतर की तरफ जाए तो हम कहेंगे, क्या पागलपन कर रहे हो? जिंदगी छोड़ कर कहां भागे चले जा रहे हो? लेकिन ऐसा हो जाता है। अगर बहुत लोग यही कहें तो बेचारा जो जा रहा है अपनी तरफ वह भी सोचने लगता है कि पता नहीं क्योंकि जब सारे लोग कह रहे हैं, हजारों लोग यही कह रहे हैं तो यही ठीक कहते होंगे।
सुनी होगी एक कहानी, छोटी सी एक कहानी है।
एक ब्राह्मण एक गांव से एक बकरी खरीद कर वापस लौट रहा है। बड़ी प्रसिद्ध है कहानी, लेकिन आधी सुनी होगी। मैं पूरी ही सुनाना चाहता हूं। वह बकरी को रख कर कंधे पर वापस लौट रहा है। सांझ हो गई है, दो-चार गुंडों ने उसे देखा है। उन्होंने कहाः अरे, यह बकरी तो बड़ी स्वादिष्ट मालूम पड़ती है। इस नासमझ ब्राह्मण के साथ जा रही है, इसको मजा भी क्या आएगा, ब्राह्मण को भी क्या, बकरी को भी क्या। इस बकरी को छीन लेना चाहिए। एक गुंडे ने आकर उसके सामने उस ब्राह्मण से कहाः नमस्कार पंडित जी! बड़ा अच्छा कुत्ता खरीद लाए। उसने कहाः कुत्ता! बकरी है महाशय! आंखें कमजोर हैं आपकी? उसने कहाः बकरी कहते हैं इसे आप? आश्चर्य है। हम भी बकरी को जानते हैं। लेकिन आपकी मर्जी, अपनी-अपनी मर्जी, कोई कुत्ते को बकरी कहना चाहे तो कहे। वह आदमी चल पड़ा। उस ब्राह्मण ने सोचा, अजीब पागल हैं इस गांव के, बकरी को कुत्ता कहते हैं। लेकिन फिर भी एक दफे टटोल कर देखा, शक तो थोड़ा आया ही। लेकिन उसने पाया कि बकरी है, बिल्कुल फिजूल की बात है। अभी दस कदम आगे बढ़ा था। शक मिटा कर किसी तरह आश्वस्त हुआ था कि दूसरा उनका साथी मिला, उसने कहाः नमस्कार पंडित जी! लेकिन, आश्चर्य, ब्राह्मण होकर कुत्ता सिर पर रखें! जाति से बाहर होना है? उसने कहाः कुत्ता! लेकिन अब वह उतनी हिम्मत से न कह सका कि यह बकरी है। हिम्मत कमजोर पड़ गई। उसने कहाः आपको कुत्ता दिखाई पड़ता है? उसने कहाः दिखाई पड़ता है, है! नीचे उतारिए, गांव का कोई आदमी देख लेगा पड़ोस का तो मुश्किल में पड़ जाएंगे।
वह आदमी गया तो उस ब्राह्मण ने उस बकरी को नीचे उतार कर गौर से देखा।
वह बिल्कुल बकरी थी। यह तो बिल्कुल बकरी है, लेकिन दो-दो आदमी भूल कर जाएं, यह जरा मुश्किल है। फिर भी सोचा, मजाक भी कर सकते हैं। चला फिर कंधे पर रख कर, लेकिन अब वह डर कर चल रहा है, अब वह जरा अंधेरे में से बच कर निकल रहा है। अब वह गलियों में से चलने लगा है, अब वह रास्ते पर नहीं चल रहा है। तीसरा आदमी उसे एक गली के किनारे पर मिला। उसने कहाः पंडित जी हद्द कर दी। कुत्ता कहां मिल गया? कुत्ते की तलाश मुझे भी है। कहां से ले आए हैं यह कुत्ता, ऐसा मैं भी चाहता हूं। तब तो वह यह भी न कह सका कि क्या कह रहे हैं। उसने कहा कि जी हां, खरीद कर ला रहा हूं। वह आदमी गया कि फिर उसने उतार कर भी नहीं देखा, उसे छोड़ा एक कोने में और भागा। उसने कहा कि अब इससे भाग ही जाना उचित है। झंझट हो जाएगी, गांव के लोग देख लेंगे। पैसे तो मुफ्त गए ही गए, जाति और चली जाएगी।
यह जो तीन आदमी कह गए हैं एक बात को तो बड़ी सच मालूम पड़ने लगती है। यह
तो आधी कहानी है। दूसरे जन्म में ब्राह्मण फिर बकरी लेकर चलता था। बकरी लेकर लौट रहा है लेकिन पिछले जन्म की याद है। वह जिसको याद रह जाए उसी को तो ब्राह्मण कहना चाहिए, किसी और को ब्राह्मण कहना नहीं चाहिए। बकरी लेकर लौट रहा है, वही गुंडे। असल में हम भूल जाते हैं इसलिए ख्याल नहीं रहता है कि वही-वही बार-बार हमको कई बार मिलते हैं, कई जन्मों में वही लोग बार-बार मिल जाते हैं। वही तीन गुंडे, उन्होंने देखा, अरे, ब्राह्मण बकरी को लिए चला जा रहा है! छीन लो, उन्हें कुछ पता नहीं है कि पहले भी छीन चुके हैं।

किसको पता है? अगर हमें पता हो कि हम पहले भी यही कर चुके हैं तोशायद फिर दुबारा करना मुश्किल हो जाए। फिर उन्होंने शडयंत्र रच लिया है, फिर एक गुंडा उसे रास्ते पर मिला है। उसने कहाः नमस्कार पंडित जी! बड़ा अच्छा कुत्ता, कहां ले जा रहे हैं? पंडित जी ने कहाः कुत्ता सच में बड़ा अच्छा है। उसने गौर से देखा, गुंडे ने सोचा, हमको तो बकरी दिखाई पड़ती थी, हम तो धोखा देने के लिए कुत्ता कहते थे। और उस पंडित ने कहाः कुत्ता सच में बड़ा अच्छा है, बड़ी मुश्किल से मिला, बहुत मांग कर लाया, बड़ी मेहनत की, खुशामद की किसी आदमी की, तब मिला। उस गुंडे ने बहुत गौर से फिर से देखा कि मामला क्या है, भूल हो गई है? लेकिन उसने कहाः नहीं पंडित जी, कुत्ता ही है न! उसने कहाः कैसी बात कर रहे हैं आप, कुत्ता ही है। अब वह गुंडा मुश्किल में पड़ गया है, वह यह भी नहीं कह सकता कि बकरी है, क्योंकि खुद उसने कुत्ता कहा था। दूसरे कोने पर दूसरा गुंडा मिला। उसने कहा कि धन्य हैं, धन्य महाराज, आप कुत्ता सिर पर लिए हुए हैं?
ब्राह्मण ने कहाः कुत्ते से मुझे बड़ा प्रेम है। आपको पसंद नहीं आया कुत्ता? उस आदमी ने गौर से देखा, उसने कहाः कुत्ता! तीसरे चौरस्ते पर मिला है तीसरा आदमी, लेकिन उन दोनों ने उसको खबर दे दी कि मालूम होता है, हम ही गलती में हैं। हमें बकरी दिखाई पड़ रही है। उस तीसरे आदमी ने गौर से देखा। और उस पंडित ने कहाः क्या देख रहे हैं गौर से? उसने कहाः कुछ नहीं, आपका कुत्ता देख रहा हूं। काफी अच्छा है।
हम भीड़ से जी रहे हैं और चल रहे हैं और पुनरुक्ति हमारा आधार बन गया है। चारों तरफ जो हो वह हमें स्वीकार हो जाता है। और अगर पुनरुक्ति की जाए बार-बार असत्य की भी तो वह सत्य मालूम पड़ने लगता है। यह बात बहुत बार दोहराई गई है कि संन्यासी वह है जो भाग रहा है जिंदगी से। जो भाग रहा है वह संन्यासी तो क्या, गृहस्थ भी नहीं है। संन्यासी होना तो बहुत मुश्किल है। जो जिंदगी को जी रहा है वह संन्यासी है। और जो सिर्फ जिंदगी जीने का इंतजाम कर रहा है, और जी नहीं रहा है, वह गृहस्थ है। जो सिर्फ जिंदगी का इंतजाम कर रहा है और जी नहीं रहा है वह गृहस्थ है। और जो जिंदगी को जी रहा है वह संन्यासी है।
अगर भागने की भाषा में सोचना हो तो गृहस्थ जिंदगी से भागा हुआ हो सकता है, संन्यासी भागा हुआ नहीं हो सकता। लेकिन हम भागे हुए संन्यासियों को जानते हैं। असल में हमने भागे हुओं को ही संन्यासी समझ रखा है। इसलिए बड़ी भूल हो गई है। संन्यासी और जिंदगी से भागेगा? तो फिर जिंदगी को जीएगा कौन? फिर जिंदगी को जीएगा कौन? और संन्यासी अगर जिंदगी से भागेगा तो परमात्मा को फिर जानेगा कौन? क्योंकि कहीं अगर परमात्मा है तो जिंदगी में ही छिपा है। नहीं, संन्यासी जिंदगी को जीता है उसकी परिपूर्णता में। लेकिन निश्चित ही परिपूर्णता में जीने के लिए बहुत सी बातें उससे छूट कर गिर जाती हैं। आप यह मत सोचना कि वह छोड़ देता है। मेरे हाथों में कंकड़-पत्थर भरे हों और मुझे हीरों की खदान मिल जाए और मैं पत्थर छोड़ दूं हाथ से और हीरों की खदान से हीरे बीनने लगूं और आप कहें कि यह आदमी बड़ा पागल मालूम होता है, इसने कंकड़-पत्थरों का त्याग कर दिया। तो पागल मैं हूं या आप? आपको हीरे नहीं दिखाई पड़ रहे हैं, आपको हीरे की खदानें नहीं दिखाई पड़ रही हैं। आपको सिर्फ इतना ही दिखाई पड़ रहा है कि मेरे हाथों में कंकड़-पत्थर थे, वे मैंने छोड़ दिए। मैं बड़ा त्यागी हूं। अब तक किसी संन्यासी ने कोई त्याग नहीं किया। सिर्फ नासमझ त्याग कर लेते हैं, बात दूसरी है।
संन्यासी तो और वृहत्तर आनंद को उपलब्ध हो जाता है, इसलिए क्षुद्र से उसे हाथ खाली करने पड़ते हैं। वह हाथ से छोड़ता नहीं है, चीजें छूट जाती हैं, बेमानी हो जाती हैं। अगर आपको हीरा मिल जाए तो आप पत्थर को हाथ में लेकर चलेंगे? या कि पत्थर आपको छोड़ना पड़ेगा? नहीं, पता ही नहीं चलेगा कि कब पत्थर हाथ से छूट गया और हीरा आ गया। हां, दूसरे, जिनके हाथों में अभी भी पत्थर हैं, वे समझेंगे कि बड़ा त्यागी आदमी है। उन्हें वह हीरा दिखाई नहीं पड़ रहा है। और कुछ ऐसे हीरे हैं जो दिखाई नहीं पड़ते। धर्म का उन्हीं हीरों से संबंध है जो दिखाई नहीं पड़ते। कुछ ऐसे भोग हैं जो दिखाई नहीं पड़ते।

संन्यासी वह नहीं है जिसने भोग छोड़ दिया, संन्यासी वह है जो भोग की पूर्णता को उपलब्ध हुआ, जो अब परमात्मा को भी भोग रहा है। इसे ठीक से ही समझ लेना--जो परमात्मा को भी भोग रहा है। जो भोजन कर रहा है तो सिर्फ भोजन ही नहीं कर रहा है, भोजन में परमात्मा का स्वाद भी समाविष्ट है। और जो अगर आपके सुंदर चेहरे को देख रहा है तो आपके सुंदर चेहरे को ही नहीं देख रहा है, आपके भीतर से जो सौंदर्य की अनंत धारा जुड़ी है प्रभु से, वह भी उसे दिखाई पड़ गई है। संन्यासी का अर्थ है--वह जिसने भोग का राज जान लिया, जिसने जीवन के रस की उपलब्धि की कला, कीमिया सीख ली। लेकिन हम तो यही सोचते रहे हैं कि भागने वाला संन्यासी है। भागने वाला रुग्ण है, संन्यासी नहीं है। भागने वाला विक्षिप्त है। भागने वाला, जो हाथ में था कंकड़-पत्थर वह भी छोड़ दिया है, और हीरे तो उसे मिले नहीं। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। इसलिए जिसे हम इस देश में संन्यासी कह रहे हैं, सारी दुनिया में वह बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ आदमी है। उसने घर भी छोड़ दिया, पत्नी भी छोड़ दी, बच्चे भी छोड़ दिए, और परमात्मा भी उसे मिला नहीं। वह त्रिशंकु की भांति बीच में अटका रह गया।
मुझे कितने संन्यासी मिलते हैं रोज। अगर सबके सामने मुझसे बात करते हैं तो आत्मा परमात्मा की बात करते हैं। एकांत में मुझसे मिलते हैं तो कहते हैं, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। क्योंकि जो था वह हमने छोड़ दिया और जो मिलने की आशा थी वह मिला नहीं। हम बहुत कठिनाई में हैं। संन्यासी की कठिनाई का आपको पता नहीं कि संन्यासी कितनी कठिनाई में है। वह तो संन्यासी भाग क्यों नहीं आता संन्यास छोड़ कर? हमने लौटने के सब रास्ते बंद कर रखे हैं अन्यथा सौ में से निन्यानबे संन्यासी आज जाएं और कल वापस लौट आएं। इसीलिए हमने रास्ते भी बंद कर रखे हैं कि लौट मत आना। लौटने का पक्का डर है। तो हम कहते हैं, गृहस्थ से संन्यासी हो तो आदर देते हैं, संन्यासी से गृहस्थ वापस लौटे तो अनादर करते हैं। अनादर रोकने का कारण बन जाता है। अपमान करते हैं, अपमान रोकने का कारण बन जाता है। एक दफा एक आदमी संन्यासी हो जाए, उसे लौटने की हम सुविधा नहीं देते हैं। हम कहते हैं, बस। संन्यास में एंट्रेंस तो है, एकि्.जट बिल्कुल नहीं है। वहां भीतर जाने का रास्ता है, बाहर आने का रास्ता ही नहीं रखा। बाहर आने का रास्ता इसलिए नहीं रखा हुआ है कि अगर रखें रास्ता तो हाल खाली हो जाए। वहां से सभी वापस आ जाएं, इस दरवाजे से जाएं, उस दरवाजे से दूसरे दिन बाहर आते मालूम पड़ें। क्योंकि जो आदमी बिना पाए छोड़ देगा वह मुश्किल में पड़ जाएगा।
पाना पहले है, छोड़ना पीछे है। छोड़ना पाने की छाया है। जो पा लेता है वह छोड़ सकता है। जो परमात्मा को पा लेता है वह संसार को छोड़ सकता है। छोड़ने की बात ही फिजूल है। असल में जो परमात्मा को पा लेता है उससे वे सब क्षुद्रताएं छूट जाती हैं, जिन्हें वह कल तक पकड़े हुए था।
लेकिन यह हमारे ख्याल में न होने से हमने एक त्याग की, छोड़ने की, निगेटिव की...
उन मित्र ने पूछा है कि आप छोड़ने की बातें मत बताएं।
मैं बता ही नहीं रहा हूं छोड़ने की बातें। मैं निगेटिव बात नहीं बता रहा हूं। मैं तो बिल्कुल विधायक बात ही कह रहा हूं। मैं तो यही कह रहा हूं कि जिंदगी ही परमात्मा है, और इसे कैसे हम पूरी तरह जी सकें, उसकी कला धर्म है।
दूसरी बात उन्होंने यह पूछी है कि बुराई है तो बुराई को अकेला ध्यान करने से हम कैसे मिटा सकेंगे?
यह ऐसे ही है जैसे कोई आदमी कहे कि बीमारी है, और बीमारी अकेली दवा लेने से हम कैसे मिटा सकेंगे? बीमारी मिटाने का कोई सीधा रास्ता बताइए। एक आदमी कहे कि मुझे खांसी आ रही है, मुझे जुकाम है, मुझे बुखार है, मुझे टी.बी. है, कैंसर है, अब डाक्टर उसे एक बोतल पकड़ाता है। वह आदमी कहता है, पागल हो गए हो तुम? इधर कैंसर से मरे जा रहे हैं, तुम बोतल पकड़ा रहे हो? बोतल क्या करेगी? वह आदमी कहे, इधर कैंसर से मरा जा रहा हूं, तुम लाल रंग का पानी मुझे पकड़ा रहे हो? यह लाल रंग के पानी से क्या होगा? लेकिन उसे ख्याल में नहीं आ रही है यह बात कि कैंसर या बीमारी कोई सीधी निकाल कर बाहर थोड़ी रख देगा।

कैंसर या बीमारी निकालने के लिए, बदलाहट करने के लिए कुछ उससे विपरीत डालना पड़ेगा।
हम बीमार हैं, बीमारी से विपरीत प्रयोग करने से बीमारी कट जाएगी। यह थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि बुराई है इसलिए कि हम शांत नहीं हैं। हम शांत हो जाएं तो बुराई मिट जाएगी। बुराई है बीमारी, ध्यान है दवा। ध्यान है औषधि। और ध्यान रहे कि आज तक पृथ्वी पर ध्यान से बड़ी कोई औषधि नहीं खोजी जा सकी है। बहुत औषधियां खोजी गई हैं लेकिन ध्यान से बड़ी कोई औषधि अब तक नहीं खोजी गई है। उसका कारण है। सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे ध्यान के अभाव के कारण ही, हमारी बीमारियां, हमारी बुराइयां पैदा होती हैं।
जैसे उदाहरण के लिए, आपमें क्रोध है, आप किसी से पूछें कि क्रोध को हम सीधा अलग कैसे करें? क्रोध को सीधा अलग करने का कोई उपाय नहीं होता है। क्रोध है, वह इस बात की खबर दे रहा है कि आप भीतर अशांत हैं। अशांति से क्रोध जन्मता है। आप कहें, मुझे क्रोध को अलग करना है, मुझे अशांति से कोई मतलब नहीं है। तो आप कभी क्रोध को अलग न कर सकेंगे, आप कहें मुझे पाजिटिव, सीधा रास्ता बता दें। कोई रास्ता नहीं है। आप क्रोध में हैं, यह इस बात की खबर है कि क्रोध सिर्फ लक्षण है इस बात का कि भीतर अशांत हैं आप। भीतर शांति लानी पड़ेगी। भीतर शांति आ जाएगी, ऊपर से क्रोध विलीन हो जाएगा।
एक आदमी को बुखार चढ़ा है, शरीर पर गर्मी है। शरीर की गर्मी असली बुखार नहीं है। बुखार तो भीतर होगा, बीमारी भीतर होगी। गर्मी तो केवल बीमारी की खबर है कि भीतर बुखार है, भीतर बीमारी है, शरीर उत्तप्त हो गया है। उत्तप्त शरीर खबर दे रहा है कि भीतर बीमारी है। अब एक आदमी कहे कि मुझे तोशरीर को ठंडा करने का सीधा उपाय बता दो। तो ठीक है कि जाओ ठंडे पानी में नहाओ, बर्फ रख लो अपने शरीर पर। उससे बुखार ही नहीं जाएगा, बीमार भी चला जाएगा। गर्मी सिर्फ लक्षण है, ताप सिर्फ लक्षण है। बीमारी नहीं है। बीमारी और गहरे में है। और शरीर की व्यवस्था है कि गर्म करके वह खबर दे दे कि भीतर बीमारी है ताकि ऊपर तक खबर पहुंच जाए, नहीं तो पता कैसे चलेगा। क्रोध लक्षण है। बीमारी? बीमारी भीतर अशांत चित्त है। और वह अशांत चित्त ध्यान के प्रयोग से शांत होता है। वह मित्र मुझसे पूछते हैं कि आप कहते हैं, ध्यान! हमारी बीमारियां हैं, अशांति है, क्रोध है, घृणा है, ईर्ष्या है, हजार तरह की बुराइयां हैं, और आप कहते हैं ध्यान; अकेले ध्यान से क्या होगा? मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जिनको आप बीमारियां और बुराइयां कह रहे हैं वे बुनियादी रूप से बुराइयां नहीं हैं, बुराइयों के सिर्फ बाहरी लक्षण हैं, बाहरी खबरें हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि यहां अंधेरा भरा हो और कोई आकर हमसे कहे अंधेरे को सीधा अलग करने का रास्ता बता दीजिए। हम उससे कहें कि तुम एक दीया जलाओ। वह कहे कि दीये से हमें कुछ लेना-देना नहीं। हमें अंधेरा अलग करना है। हमें तो अंधेरे को अलग करने का डायरेक्ट रास्ता चाहिए, सीधा रास्ता चाहिए। यह दीये-वीये जलाने की झंझट में हम न पड़ेंगे। अंधेरे को दूर करना है।
उसकी बात तो ठीक है। वह कहता है, अंधेरे को दूर करना है तो दीया क्यों जलाएं? आप अंधेरे को काटने की कोई तरकीब बता दें। कोई तलवार हो, जिससे अंधेरा कट जाए; कोई डिब्बे हों, जिसमें अंधेरे को पैक करें और फेंक आएं। कोई ऐसी तरकीब बताएं कि अंधेरे से सीधे निपटारा हो जाए। हम इस दीये के जलाने की झंझट में नहीं पड़ना चाहते। इसमें हम पड़ जाएंगे, अंधेरा कौन अलग करेगा? तब मुश्किल हो जाएगी। अंधेरे को सीधा अलग नहीं किया जा सकता। दीया जलाया जा सकता है। और दीये के जलने पर अंधेरा अलग नहीं होता है। असल में अंधेरा तो था ही नहीं। दीये के जलने पर पता चल जाता है कि नहीं था। कहीं चला नहीं जाता अंधेरा कि इधर हमने दीया जलाया तो इधर का अंधेरा कहीं बगल के रास्ते से कहीं और चला गया। कहीं जाता नहीं है। अंधेरा कोई वस्तु नहीं है। अंधेरा केवल दीये का अभाव है, प्रकाश का अभाव है।
जिसको हम ईविल कहते हैं, बुराई कहते हैं वह केवल भलाई का अभाव है। जिसे हम क्रोध कहते हैं, वह केवल शांति का अभाव है। ध्यान दीये का जलाना है। भीतर दीया जल जाए, बाहर से ये सब अभाव विदा हो जाएंगे। अब तक किसी ध्यानी आदमी ने अगर कोई बुराई की हो तो विचारणीय हो जाए।

एक बहुत अदभुत फकीर हुआ, नागार्जुन। वह एक गांव से गुजर रहा है और उस गांव की रानी उसका बड़ा आदर करती है। उसने उसको भोजन खिलाया है। नंगा फकीर है। और उसको एक हाथ में सोने का पात्र दे दिया है और कहा, लकड़ी का पात्र यहां छोड़ दो। सोने का पात्र है और उस पर हीरे जड़े हैं। उसकी लाखों की कीमत होगी। नागार्जुन ने ले लिया और चल पड़ा। रानी थोड़ी चकित हुई, क्योंकि उसने भी सोचा था त्यागी है, कहेगा कि मैं छू नहीं सकता सोने को। हम त्यागी को ऐसे ही पहचानते हैं। हम त्यागी को भी सोने से ही पहचानते हैं। जब तक वह यह न कहे, हम छू नहीं सकते सोने को, तब तक हम त्यागी को नहीं पहचानते हैं। जब कोई त्यागी कहता है, यह सब मिट्टी है, हम नहीं छूते। लेकिन मिट्टी को तो वह रोज छूता है और सोने को इनकार करता है। अगर मिट्टी ही है तो बेफिकरी से छुओ। नहीं, लेकिन वह कहता है, सोना मिट्टी है, हम न छुएंगे और मिट्टी को मजे से छू लेता है। तब जरा शक होता है कि सोना मिट्टी नहीं है। वह कह रहा है कि सोना मिट्टी है लेकिन उसको सोना सोना दिखाई पड़ रहा है।
उस रानी ने उसको, फकीर को कहाः अरे, आपने मना नहीं किया? कहना था कि यह सोने का पात्र! उसने कहाः कैसा सोने का पात्र? कहां का सोने का पात्र? उस रानी ने कहाः मैंने लाखों रुपये खर्च किए हैं। उसने कहाः वह तेरी नासमझी होगी। तू जान, तेरा काम जाने। मुझे क्या मतलब? मुझे इसमें रोटी मांगनी है, पात्र किसी का भी हो। रोटी इसमें खानी है, उससे मुझे मतलब है, इससे ज्यादा मुझे मतलब नहीं है। मुझे पात्र होने से मतलब है। वह लकड़ी का था, सोने का था, काहे का था, वह तुम्हारा हिसाब होगा। हमारा काम इतना है, इसमें रोटी और दाल रख कर हम खा लें। हमारा इतना काम तो यह दे देगा न पात्र? उस स्त्री ने कहाः उतना तो दे ही देगा। लेकिन मैं सोचती थी, सोने का है, आप शायद इनकार करेंगे। उसने कहाः मैं फकीर आदमी, मुझे सोने से क्या मतलब? आप समझ रहे हैं? उसने कहा, मैं फकीर आदमी, मुझे सोने से क्या मतलब! होगा सोने का। वह उनके लिए होगा जिनको सोने का मतलब होगा। रानी चकित हुई। फकीर तो चला गया।
नंगा फकीर है, सोने का पात्र है, हीरे जड़े हैं, वे चमकते हैं धूप में। गांव के एक चोर को दिखाई पड़ा। उस चोर ने कहाः हैरानी! मरे जाते हैं, परेशान हुए जाते हैं। न हीरे मिलते हैं, न सोना मिलता है। यह आदमी नंगा आदमी है, इसको कहां से इतना बढ़िया पात्र मिल गया?
मगर जिंदगी ऐसी है। यहां जो दौड़ता है जिन चीजों के पीछे, उन्हीं को खो देता है। यहां जिंदगी का नियम यह है कि भागो किसी के पीछे और वह भाग खड़ा होगा। और तुम उसकी तरफ पीठ करके भागो और वह थोड़ी देर में तुम्हारे पीछे पता लगाता हुआ आता होगा कि यह मामला क्या है, आप जा कहां रहे हैं।
उस चोर ने कहाः लेकिन यह फकीर कितनी देर तक बचा सकेगा इस पात्र को। चोर उसके पीछे हो लिया। फकीर गांव के बाहर मरघट में ठहरा है, एक टूटे खंडहर में, भरी दोपहरी में पीछे पदचाप सुनाई पड़ते हैं, तो उसने सोचा कि मेरे पीछे तो कोई कभी नहीं आता है। मालूम होता है, इस पात्र के पीछे कोई आ रहा है। यहां दुनिया बड़ी अजीब है। यहां आदमियों के पीछे कोई नहीं जाता, हाथ में सोने के पात्र हों तो बहुत लोग चले जाते हैं। यहां आदमी की तो कोई इज्जत नहीं है, हाथ में पात्र क्या है, यह सवाल है। आत्मा की तो कोई कीमत नहीं है यहां। कपड़े कैसे हैं, खीसे गरम हैं या नहीं गरम हैं, वह मूल्यवान है।
वह गया फकीर अंदर। उसने सोचा, नाहक यह बेचारा भरी दोपहरी में इतनी दूर
तक आया। रास्ते में कह देता तो वहीं इसको दे देते। और अब न मालूम कितनी देर तक इसको छिप कर बैठना पड़ेगा। मेरे तो सोने का समय हो गया है। तो उसने खिड़की से वह पात्र बाहर फेंक दिया और सो गया। वह चोर वहीं खिड़की के नीचे छिपा था, पात्र को गिरते देखा तो बड़ा हैरान हो गया। उसने कहाः अजीब आदमी है। इतना कीमती पात्र ऐसे फेंक दिया है। खड़े होकर उसने कहा कि धन्यवाद! मैं तो चोरी करने आया था और आपने पात्र फेंक ही दिया।
उस फकीर ने कहाः मैंने सोचा, नाहक तुम्हें चोरी करवाने के लिए मैं क्यों जिम्मेवार बनूं? असल में चोरों के लिए वे सब लोग जिम्मेवार हैं जिनकी तिजोरियों पर ताले हैं। उसने कहाः मैं क्यों फिजूल झंझट में पडूं? तो मैंने कहा, फेंक दूं। मैं भी झंझट से बचूं, आराम से सो जाऊं। तुम भी अपना ले जाओ, तुम भी चोर न बन पाओ।

उस चोर ने कहाः अजीब आदमी हैं, क्या मैं थोड़ी देर भीतर आ सकता हूं? उस फकीर ने कहाः इसीलिए मैंने पात्र बाहर फेंका। भीतर तो तुम आते, लेकिन तब, जब मैं सो गया होता। इसीलिए मैंने पात्र फेंका कि जगते में भीतर आ जाओ तोशायद सोने का पात्र ही नहीं, कुछ और भी तुम्हें दे सकूं।
वह चोर भीतर आ गया। वह पैर पकड़ कर उस फकीर के बैठ गया। उसने कहाः मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा। मन में ईर्ष्या होती है। कभी-कभी ऐसा होता है, कब वह दिन होगा कि मैं भी ऐसे सोने के पात्र खिड़की के बाहर फेंक दूं।
उस फकीर ने कहाः बस, हो गया काम। यही मैं चाहता था। अब तू जा, बात हो गई। नहीं। उसने कहाः इतनी जल्दी न जाऊंगा। इतनी शांति कहां पाई कि सोने का पात्र इस तरह फेंक सकते हो। इतना आनंद कहां पाया कि सोने के पात्र का कोई मूल्य नहीं मालूम पड़ता है। इतनी खुशी, इतनी जिंदगी कहां मिल गई? कुछ मुझे भी रास्ता बताओगे तुम? लेकिन एक बात पहले कह दूं, उस चोर ने कहा कि मैं और भी संतों के पास गया हूं। चोर अक्सर संतों के पास जाते हैं। असल में चोरों के सिवाय शायद ही कोई जाता हो। वे जाते हैं। संतों के पास अक्सर गया हूं, वह मुझसे पहले तो यही कहते हैं कि चोरी छोड़ दो फिर कुछ हो सकता है। वह छूटती नहीं अपने से। वह छूट सकती नहीं। तो एक पहले बात बता दूं कि चोरी छोड़ने की बात मत करना।
वह फकीर हंसने लगा और उसने कहाः फिर मालूम होता है तुम संतों के पास
गए ही नहीं। तुम भूतपूर्व चोरों के पास गए होगे। क्योंकि जो पहले से एकदम चोरी छोड़ने की बात करते हैं, जरूर कुछ गड़बड़ है, चोरी से कुछ लगाव है उनका। पहली बात यही करते हैं? उसने कहाः यही करते हैं। सब जानते हैं कि मैं चोर हूं तो वह पहले यह कहते हैं कि चोरी छोड़ो, फिर कुछ हो सकता है। बात वहीं अटक जाती है। वह शर्त ही पूरी नहीं होती। उस फकीर ने कहाः हम ये बातें न करेंगे। हमें चोरी से कुछ लेना-देना नहीं है। उस फकीर की बात सुन कर चोर ने कहाः फिर अपना-तुम्हारा मेल हो सकता है। कहिए, मैं करूंगा। उस फकीर ने कहाः एक काम कर, चोरी ध्यानपूर्वक करना।
तो उसने कहाः क्या मतलब? चोरी करूं? उस फकीर ने कहाः बिल्कुल बेफिकरी
से कर, लेकिन ध्यानपूर्वक। उसने फकीर से पूछाः यह ध्यानपूर्वक चोरी का क्या मतलब हुआ? उस फकीर ने कहाः जब तू चोरी कर तो पूरा जागा हुआ शांत मन से, पूरे होश से भरे हुए चोरी करना। बेहोशी में मत करना। पूरा जाग्रत होकर कि चोरी कर रहा हूं, जानते हुए हाथ उठाना, ताले तोड़ना, धन निकालना जानते हुए कि चोरी कर रहा हूं, बस इतना, और कुछ नहीं। उस चोर ने कहा, यह हो सकेगा। नतीजे की खबर कब दूं। उस फकीर ने कहाः पंद्रह दिन तक मैं यहां टिका हूं, तू आ जा, जब तुझे लगे कि कुछ और पूछना है।
वह चोर दूसरे दिन आया और रोने लगा और उसने कहाः मुश्किल में डाल दिया, आदमी बड़े अजीब मालूम पड़ते हैं। क्योंकि मैं कल चोरी करने गया। ऐसा मौका जिंदगी में कभी भी नहीं मिला था। राजा के महल में पहुंच गया। तिजोरी खुल गई। अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा था उस तिजोरी के सामने। हाथ डालता हूं होशपूर्वक, तो हाथ भीतर नहीं जाता है। क्योंकि जैसे ही मुझे ख्याल आता है कि चोरी कर रहा हूं, हाथ रुक जाता है। क्योंकि चोर मैं भी नहीं होना चाहता हूं। चोर! अगर कोई कह दे तो मैं उसकी गर्दन काट डालूं। चोर मैं भी नहीं होना चाहता हूं। होश छूटता है तो हाथ भीतर चला जाता है। लेकिन जैसे ही होश आता है, मुट्ठी खुल जाती है, हाथ बाहर लौट आने लगता है। आधी रात बीत गई और आखिर बिना चोरी किए वापस लौट आया। यह तो तुमने मुश्किल में डाल दिया। सीधा कहो न कि चोरी मत करो। उस फकीर ने कहाः चोरी से हमें कुछ लेना-देना नहीं। बस ध्यानपूर्वक करो। क्योंकि इतना मैं जानता हूं कि ध्यानपूर्वक आज तक कोई चोरी नहीं कर सका है, न कर सकता है।
ध्यानपूर्वक क्रोध कर सकते हैं? कैसे करिएगा ध्यानपूर्वक क्रोध?
एक मेरे मित्र बहुत क्रोधी हैं। वह मुझसे कहते थे कि मुझे कुछ सीधा सरल रास्ता बताइए। मैंने एक कागज की पट्टी पर उनको लिख कर दे दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है और इसको मैंने कहा--खीसे में रखो सदा। और जब भी क्रोध आए, पहले इसे निकाल कर पढ़ना, वापस रखना, फिर क्रोध करना। उन्होंने कहा, यह तो हो सकेगा, इसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन नहीं हो सका। क्योंकि जैसे

ही पट्टी का ख्याल आता है कि अब क्रोध आ रहा है, अचानक पाते हैं कि भीतर से कोई चीज बिखर गई और फैल गई। वह नहीं हो सकता।
ध्यानपूर्वक क्रोध नहीं हो सकता। ध्यानपूर्वक बुराई नहीं हो सकती। ध्यानपूर्वक पाप नहीं किया जा सकता और जो ध्यानपूर्वक किया जा सकता है वह पुण्य है, वह पाप नहीं हो सकता।
इसलिए मैं इतना जो जोर देता हूं कि बुराई की इतनी चिंता न लें जितनी चिंता इस बात की लें कि आपका जीवन ध्यानपूर्वक हो जाए, एक मेडिटेटिव हो जाए, ध्यानपूर्वक जीने लगें। तब आप पाएंगे कि जिंदगी सब तरफ से बदलनी शुरू हो गई क्योंकि ध्यानपूर्वक बुरा तो किया ही नहीं जा सकता। फिर वही शेष रह जाता है जो किया जा सकता है। पाप और पुण्य की परिभाषा मेरी दृष्टि में यही है। कोई मुझसे पूछता है कि पाप और पुण्य की क्या परिभाषा है तो मैं यही कहता हूं कि जिसे जाग्रत, होशपूर्वक, ध्यानपूर्वक किया जा सके--वह पुण्य है और जिसे ध्यानपूर्वक किया ही न जा सके--वह पाप है। और कोई परिभाषा मेरी समझ में नहीं आती। किसी आदमी की छाती में जानते हुए, ध्यानपूर्वक छुरा नहीं भोंका जा सकता। वह छुरा तभी भोंका जा सकता है जब हम ध्यान को खो दें। ध्यानपूर्वक ही हम जीवन में शुभ को कर सकते हैं। अशुभ कभी भी संभव नहीं है।

(एक आदमी की आपत्तिजनक आवाज)
उनकी फिकर न करें, इतनी छोटी सी बात की क्या फिकर करते हैं। एकदम बच्चों जैसी बात न करें। कोई बचकाना काम करता है, उसको करने दें। ध्यानपूर्वक न कर रहा होगा, लेकिन आप तो परेशान न हों। आप तो ध्यानपूर्वक सुन सकते हैं। उसकी फिकर नहीं करनी चाहिए, उसकी चिंता भी नहीं लेनी चाहिए। उसकी चिंता और फिकर करने से उसका काम सफल हो जाता है। उसको लगता है ठीक है, हम ही बच्चे नहीं थे और भी लोग बच्चे थे, वे भी बड़े प्रसन्न हैं।

बुराई को इस पृथ्वी से मिटाया जा सकता है। बुराई को आमूल नष्ट किया जा सकता है, लेकिन बुराई को अब तक आमूल नष्ट नहीं किया जा सका, आमूल नष्ट करना तो दूर, बुराई रोज बढ़ती चली गई। जरूर कहीं भूल हो गई। भूल यह हो गई कि हमने बुराई को सीधे मिटाने की कोशिश की है। पिछले पांच हजार वर्ष की नैतिकता, पांच हजार वर्ष के साधु-संत, पांच हजार वर्ष के शास्त्र, पांच हजार वर्ष का धर्म आदमी को बुराई से सीधा मिटाने की कोशिश में लगाए हुए है। वह कहता है कि सीधे बुराई को मिटाओ। वह कहता है कि असत्य मत बोलो। वह कहता है, पाप मत करो। वह कहता है चोरी मत करो। इसका परिणाम नहीं हो सका, जरा भी परिणाम नहीं हो सका। चोरी रोज बढ़ती चली गई; पाप रोज बढ़ता चला गया; रोज बढ़ रहा है। इसमें पापी जिम्मेवार नहीं है, इसमें हमारे पाप का निदान ही, डायग्नोसिस ही भूल भरा है। हमने बात ही गलत की है।
अगर किसी आदमी से चोरी न करवानी हो तो यह मत कहिए कि चोरी मत करो क्योंकि चोरी मत करो, इसका कोई अर्थ ही नहीं होता। इसका ऐसे ही अर्थ हुआ, जैसे किसी आदमी को बुखार है तो हम उसको कहें कि बुखार को मत लाओ। और वह आदमी कहेगा, क्या बातें आप कर रहे हैं! वह आया है औषधि लेने, आप उसको उपदेश दे रहे हैं। वह कहता है, हमें औषधि चाहिए, बुखार आ गया। आप कहते हैं, तुम बड़े पापी हो। बुखार लाओ ही मत। बुखार बड़ी बुरी चीज है। वह भी राजी होता है कि बुखार बुरी चीज है। वह भी कहता है, बुखार मैं नहीं चाहता। तो हम उससे कहते हैं, फिर तुम लाए क्यों, लाओ ही मत। वह कहता है कि बात तो समझ में आती है, लेकिन बुखार आ जाता है। उपाय? उपाय यही है कि तुम लाओ मत।
यह उपाय नहीं है। बुखार को मिटाने के लिए औषधि खोजनी जरूरी है, सिर्फ उपदेश काफी नहीं है। मैं आपको यह कह रहा हूं कि बुराई को मिटाने के लिए अब तक हमने उपदेश का प्रयोग किया है--यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। न करने से कुछ भी फल नहीं होगा। क्योंकि जिसको आप नहीं करते हैं, उसके करने की क्षमता आपके भीतर इकट्ठी होती चली जाती है और कभी बहुत विस्फोट से निकलती है। इसलिए अच्छे आदमी जब बुरे होते हैं तो बहुत बुरे होते हैं। बुरा आदमी बहुत थोड़ा ही बुरा होता है। जो आदमी दिन में दो-चार दफे क्रोध कर लेता है

वह आदमी कभी किसी की हत्या नहीं कर सकता। वह इतना क्रोध ही इकट्ठा नहीं कर पाता बेचारा कि कभी हत्या कर दे। वह रोज ही निकल जाता है उसका क्रोध।
लेकिन जो आदमी दो-चार साल तक क्रोध न किया हो उससे जरा सम्हल कर रहना। क्योंकि अगर उसका विस्फोट हो जाए तो वह हत्या से कम न करेगा। इससे कम पर उसका काम नहीं होगा। इतना उसने इकट्ठा कर लिया है।
जिंदगी में जो बड़े पाप करते हैं वे, वे लोग हैं जो छोटे-छोटे पाप न करने की जिद्द में बहुत से पाप की वृत्ति को इकट्ठा कर लेते हैं। इसलिए कभी अच्छा आदमी जब गिरता है तो बहुत बुरी तरह गिरता है, बहुत खाइयों में गिरता है। अच्छे समाज जब गिरते हैं तो बहुत खाइयों में गिरते हैं। यह हमारा समाज भी बड़ा अच्छा समाज था। और आज हम इसे देखें तो आज इससे बुरा समाज पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। क्या हो गया इस समाज को? इसने छोटी-छोटी बुराइयां न करने की कसम खा ली है। इसने इतनी बुराइयां इकट्ठी कर ली हैं भीतर कि अब सब तरफ से फोड़े-फुंसियों में फूट-फूटकर निकल रही हैं। अब पूरा व्यक्तित्व देश का सड़ रहा है।
नहीं, मैं यह मानता हूं कि हमने बुराई को मिटाने की दृष्टि ही गलत पकड़
ली है। बुराई को अगर मिटाना है, वह जो ईविल है, वह जो अशुभ है, वह जो पाप है वह क्यों पैदा होता है? यह समझना जरूरी है। वह इसलिए पैदा होता है कि मन अशांत है। अशांत मन कितने-कितने पाप कर सकता है, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। अशांत मन पुण्य तो कर ही नहीं सकता क्योंकि पुण्य के लिए शांति की भूमिका चाहिए। पुण्य के लिए, फूल पुण्य का खिल सके तोशांति की भूमि चाहिए। शांति की भूमि में ही पुण्य का फूल खिल सकता है। अशांति की भूमि में पाप का ही फूल खिलता है। भूमि ही गलत हम बनाए हुए हैं। मैं भूमि को बदलने के लिए ही जोर दे रहा हूं। लोग समझ नहीं पाते। लोग समझते हैं, ध्यान से मेरा मतलब वही है जो पहले था कि बैठ कर किसी भगवान का ध्यान कर रहे हैं, कि बैठ कर किसी मूर्ति का ध्यान कर रहे हैं, कि बैठ कर किसी मंत्र का जाप कर रहे हैं, कि बैठ कर कोई माला फेर रहे हैं। नहीं, मेरा इन ध्यानों से कोई संबंध नहीं है। ध्यान से मेरा यह मतलब नहीं है कि आप बैठ कर किसी भगवान का स्मरण कर रहे हैं। अगर भगवान का पता ही नहीं तो स्मरण कैसे करिएगा। और किस मूर्ति का स्मरण करिएगा? कौन सी मूर्ति है भगवान की? कौन सा नाम लीजिएगा, कौन सा नाम है उसका?
नहीं, इससे कुछ होने का नहीं है। मैं ध्यान से कुछ और ही अर्थ ले रहा हूं, वह अंतिम बात आपसे कह दूं ताकि आपके ख्याल में रह जाए। हो सकता है बहुत से मित्र सुबह ध्यान में नहीं भी आए उनको भी ख्याल हो जाए। ध्यान से मेरा अर्थ हैः परिपूर्ण समर्पण, टोटल सरेंडर। वह जो हमारे चारों तरफ विराट जीवन है, उसके साथ एक हो जाने की स्थिति, उसके साथ तालमेल बिठा लेने की स्थिति, उसमें डूब जाने की स्थिति, उसमें खो जाने की, लीन हो जाने की स्थिति। और जब कोई व्यक्ति इस स्थिति में प्रवेश करता है तो उसके भीतर इतनी शांति उत्पन्न होती है जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। क्यों होती है उत्पन्न? इसलिए उत्पन्न होती है कि जब तक हम सारे जगत से अपने को तोड़े रखते हैं, अलग रखते हैं, तब तक हम सारे जगत के गहरे अर्थों में दुश्मन बने होते हैं, और दुश्मन कभी भी शांत नहीं हो सकता। जब तक मैं सारी दुनिया से अलग हूं तब तक सारी दुनिया मेरी दुश्मन है। जब तक मैं सारी दुनिया से भिन्न हूं तब तक सारी दुनिया से मुझे अपने को बचाना है। सारी दुनिया को जीतना है। अपने को बचाना है, अपने को मिटने नहीं देना है। तब तक मैं लडूंगा, लड़ाई अशांति बनेगी, लड़ाई तनाव बनेगी। लेकिन अगर मैंने सारी दुनिया से अपने को एक माना, एक जाना, एक पहचाना और अगर दस क्षण को भी मेरे मन से सारा विरोध छूट गया और मैं एक हो गया तो अशांति कैसे रह जाएगी। तो चित्त शांत हो जाएगा।
उस चित्त की शांति की दशा में द्वार खुलता है वह, जिसे हम प्रभु कहें, जीवन कहें, उसकी झलक पहली दफे दिखाई पड़ती है। और वह झलक दिखाई पड़ जाए तो आप तत्काल दूसरे आदमी हो जाते हैं। होना नहीं पड़ता। आप दूसरे आदमी हो जाते हैं।
एक छोटी सी कहानी से स्मरण दिलाऊं, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक सम्राट का लड़का घर से भाग गया। भाग क्या गया था, कोई लड़का कभी भागता नहीं, जब तक बाप भगाए न। बाप उपद्रवी था, अक्सर बाप उपद्रवी होते हैं, क्योंकि बच्चे तो बहुत निरीह और निर्दोष आते हैं। जब तक उनको उपद्रव में डाला न जाए, सांचे में बिठाया न जाए, तब तक उपद्रवी हो नहीं सकते। बाप की पीढ़ी जब तक नई पीढ़ी को उपद्रव में ढाले न तब तक उपद्रव में जा कैसे सकती है। बाप की परेशानियों से हैरान, मुश्किल होकर वह लड़का भाग गया था। पांच साल तक बाप ने उसकी फिकर भी नहीं की। क्रोध में था बाप भी। लेकिन एक ही लड़का था। बाप बूढ़ा होने लगा, तब उसे याद सताने लगी। फिर उसने अपने वजीरों को कहा ढूंढ़ो, उसे ले आओ वापस। वह लड़का बेचारा, राजा का लड़का था। राजा का लड़का होना भी कभी-कभी बड़ा दुर्भाग्य होता है। राजा का लड़का था, न ठीक से पढ़ा, न लिखा। राजा का लड़का था, कभी कोई मेहनत न की थी। तो सिवाय भीख मांगने के और कोई उपाय न रहा। राजा का लड़का अगर राजा न रह जाए तो भिखारी ही हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है। भीख मांगने लगा। पांच साल में तो भूल ही चुका था कि राजा का लड़का है। कैसे याद रखो, जब मांगनी पड़ती हो भीख तो कितनी देर तक याद रखो कि राजा के लड़के हैं। थोड़े दिन याद रहा होगा, फिर भूल गया। फिर मिट गया ख्याल भी।
वजीर खोजते-खोजते उस गांव में पहुंचे, जहां वह भरी दोपहरी में एक साधारण सी गंदी होटल के सामने जुआ खेलते लोगों से भीख मांग रहा था। और पैर बता रहा था, पैर में फफोले पड़े थे, कपड़े फट गए थे। कपड़े वही थे, पांच साल पहले जिनको लेकर निकला था। लेकिन अब पहचानना मुश्किल था। न कभी धुले थे। धूल, कीचड़ सब कट-पिट गए, सब पांच साल में बरबाद हो गए। उन्हीं फटे कपड़ों को पहने हुए हाथ जोड़े भीख मांग रहा था और मांग रहा था भीख, जूते के लिए। जूते समाप्त हो गए थे। और भरी तेज धूप थी और सड़कें जलती थीं। उसके पैर पर फफोले थे, और कपड़े बांधे था और लोगों से कह रहा था मेरे पैर पर फफोले हैं दया करो और कुछ चार पैसे दे दो कि मैं जूते खरीद लूं।
लोग उसकी तरफ ध्यान ही न दे रहे थे। कोई उसकी फिकर ही न कर रहा था। तभी
रथ रुका उस द्वार के सामने आकर। वजीर ने नीचे उतर कर देखा, वही मालूम पड़ता है। भागा हुआ पास गया, चेहरा देखा, वही है। पैर पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज ने याद किया है, वापस चलें। पिता बीमार हैं, राज्य का अधिकार कौन सम्हाले? हाथ में टूटा सा अल्युमिनियम का बर्तन था, दस-पांच पैसे उसमें पड़े थे। एक क्षण में सब बदल गया--एक क्षण में! पात्र फेंक दिया उसने जोर से सड़क पर। सारे जुआरी चौंक कर खड़े हो गए, सामने रथ खड़ा देखा। जुआ बंद हो गया, होटल के सारे लोग बाहर आ गए। उसने वजीर से कहाः जाओ, पहले तो यह करो, अच्छे वस्त्र लाओ, जूते लाओ, स्नान का इंतजाम करो, भोजन का इंतजाम करो। उसकी सब आंखें बदल गईं, उसका चेहरा बदल गया, कपड़े अभी भी वही थे, सड़क वही थी, होटल वही था, पात्र नीचे पड़ा था, लेकिन अब वह सम्राट हो गया था।
होटल के लोगों ने कहाः आपका चेहरा एकदम बदल गया। उसने कहाः बात मत करो, सोच कर बोलो, किससे बोल रहे हो। सम्राट हूं। वजीर कंप रहा है, लोग भागे हैं, कपड़े आ गए हैं, सब इंतजाम हो रहा है, इत्र छिड़के जा रहे हैं, स्नान करवाया जा रहा है। वह आदमी रथ पर बैठ गया। वे होटल के लोग बड़े उत्सुक हैं कि थोड़ी तो पहचान याद रखना। पर अब बात बिल्कुल बदल गई है। पहले वे उसकी तरफ देख भी न रहे थे, अब वह उनकी तरफ बिल्कुल नहीं देख रहा है, अब वह कहीं और है। क्या हो गया है इस क्षण में? एक क्षण में एक किरण आई, एक स्मरण आया, एक रथ आया द्वार पर, जिसने कहा सम्राट हो तुम।
ध्यान की गहराइयों में वह किरण आती है, वह रथ आता है द्वार पर जो कहता
है सम्राट हो तुम, परमात्मा हो तुम, प्रभु हो तुम, सब प्रभु है, सारा जीवन प्रभु है। जिस दिन वह किरण आती है, वह रथ आता है, उसी दिन सब बदल जाता है। उस दिन जिंदगी और हो जाती है। उस दिन चोर होना असंभव है। सम्राट कहीं चोर होते हैं! उस दिन क्रोध करना असंभव है। उस दिन दुखी होना असंभव है। उस दिन एक नया जगत शुरू होता है। उस जगत, उस जीवन की खोज ही धर्म है।
इन चार चर्चाओं में इस जीवन, इस प्रभु को खोजने के लिए क्या हम करें,
उस संबंध में कुछ बातें मैंने कही हैं। मेरी बातों से वह किरण न आएगी, मेरी बातों से वह रथ भी न आएगा, मेरी बातों से आप उस जगह न पहुंच जाएंगे। लेकिन

हां, मेरी बातें आपको प्यासा कर सकती हैं। मेरी बातें आपके मन में घाव छोड़ जा सकती हैं। मेरी बातों से आपके मन की नींद थोड़ी बहुत चौंक सकती है। हो सकता है, शायद आप चौंक जाएं और उस यात्रा पर निकल जाएं जो ध्यान की यात्रा है।
तो निश्चित है, आश्वासन है कि जो कभी भी ध्यान की यात्रा पर गया है, वह धर्म के मंदिर पर पहुंच जाता है। ध्यान का पथ है, उपलब्ध धर्म का मंदिर हो जाता है। और उस मंदिर के भीतर जो प्रभु विराजमान है, वह कोई मूर्तिवाला प्रभु नहीं है, समस्त जीवन का ही प्रभु है।

"जीवन ही है प्रभु" इस संबंध में इन चार दिन मेरी बातों को इतनी शांति
और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।